युगपुरुष श्री कानजी स्वामी

युगपुरुष श्री कानजी स्वामी

सम्पादक :

डॉ. हुकमचन्द भारिल्ल

प्रकाशक :

पूज्य श्री कानजी स्वामी स्मारक ट्रस्ट, देवलाली

एवं

पण्डित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट, जयपुर

प्रथम दो संस्करण : १० हजार
(२० अप्रेल ७४ से फरवरी ८१)

तृतीय संस्करण : ३ हजार
(२ अक्टूबर १९९५)

योग : १३ हजार

मूल्य : पांच रुपये

मुद्रक :
ग्राफिक ऑफसेट प्रिण्टर्स,
जयपुर–फोन नं. 568700

प्रकाशकीय

पूज्य श्री कानजीस्वामी इस युग के बहुचर्चित आध्यात्मिक अनुभवी महापुरुष थे। उनके प्रताप से इस युग में एक अलौकिक आध्यात्मिक क्रान्ति का सूत्रपात हुआ है । ऐसे व्यक्तित्व के जीवन एवं कार्यों के बारे में जानने के लिए जन-जन का उत्सुक होना स्वाभाविक है। वर्तमान में ऐसी कोई पुस्तक उपलब्ध नहीं थी, जो उनके जीवन एवं सिद्धांतों के सम्बन्ध में विस्तृत रूप से प्रामाणिक जानकारी दे सके।

यद्यपि प्रस्तुत पुस्तक उक्त कमी की पूर्ति तो नहीं कर सकती, तथापि जब तक इसप्रकार की पुस्तक तैयार नहीं होती तब तक के लिए 'न होने से कुछ होना ठीक है' की नीत्यानुसार इस पुस्तक का प्रकाशन किया जा रहा है। अब तक इसके दो संस्करण प्रकाशित हो चुके हैं और यह तीसरा संसकरण आपके हाथों में है।

प्रस्तुत पुस्तिका में पूज्य स्वामीजी के निकट सम्पर्क में रहने वाले विद्वानों द्वारा समय-समय पर लिखे गए ऐसे लेखों का संकलन किया गया है, जिनके पढने से स्वामीजी के व्यक्तित्व और कर्तृव्य का एक सामान्य सा परिचयात्मक चित्र पाठक के सामने आ जाय। इसी उद्देश्य से डा. भारिल्ल द्वारा स्वामीजीसे लिये गये इन्टरव्यू भी इसमें दिए गये हैं ।

पुस्तक का सम्पादन डॉ. हुकमचन्दजी भारिल्ल ने किया था, उनके प्रति हम हृदय से आभार मानते हैं साथ ही इसमें जो अन्य लेख प्रकाशित हैं, उन लेखकों का भी हम आभार मानते हैं। आशा है पुस्तिका रुचिकर लगेगी।

समस्त ट्रस्टीगण

पूज्य श्री कानजी स्वामी स्मारक ट्रस्ट, देवलाली

एवं

पंडित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट, जयपुर

अनुक्रमणिका

		पृष्ठ
१.	अन्तर्बाह्य व्यक्तित्व के धनी : कानजी स्वामी — डॉ० हुकमचन्द भारिल्ल	५
२.	पूज्य श्री कानजी स्वामी : मूल्यांकन और उपलब्धियाँ — श्री नेमीचन्द पाटनी	१५
३.	चैतन्य चमत्कार : एक इन्टरव्यू कानजी स्वामी से — डॉ० हुकमचन्द भारिल्ल	४०
४.	जनमानस की दृष्टि में : पूज्यश्री कानजी स्वामी — पं० रतनचन्द भारिल्ल	४६
५.	सम्यग्ज्ञानदीपिका : एक और इन्टरव्यू — डॉ० हुकमचन्द भारिल्ल	८१
६.	भगवान महावीर और उनके अनुयायी युगपुरुष कानजी स्वामी — डॉ० हुकमचन्द भारिल्ल	६४
७.	पूज्य गुरुदेवश्री कानजी स्वामी और उनका जीवन दर्शन — बाबू युगलकिशोर 'युगल'	१०३
८.	हम तो उनके दासानुदास हैं : एक इन्टरव्यू कानजी स्वामी से — डॉ० हुकमचन्द भारिल्ल	१३१
९.	वह तो नाममात्र का भी जैन नहीं : एक और इन्टरव्यू — डॉ० हुकमचन्द भारिल्ल	१३८
१०.	तूफान (कविता) — बाबू युगलकिशोर 'युगल'	१४६

अन्तर्बाह्य व्यक्तित्व के धनी : कानजी स्वामी

"आत्मा·····आत्मा·····आत्मा····भगवान् आत्मा सदा ही अति निर्मल है, पर से अत्यन्त भिन्न परम पावन है। यह त्रिकाली ध्रुवतत्त्व आनन्द का कन्द और ज्ञान का घनपिण्ड है। रंग, राग और भेद से भी भिन्न अतीन्द्रिय परम पदार्थ निजात्मा ही एकमात्र आश्रय करने योग्य है। उसका ही आश्रय करो, उसमें ही जम जावो, उसमें ही रम जावो।" —यह प्रेरणा देते-देते लाखों की सभा में भी, क्षण भर को ही सही, अपने में रम जाने वाले, अपने में ही जम जाने वाले युगान्तरकारी आध्यात्मिक सत्पुरुष कानजी स्वामी को लाखों आँखों ने लाखों बार अपने में मग्न होते देखा होगा। उन्होंने क्या कहा? उसका क्या भाव है? कानों से सुनकर चाहे बहुत कम लोगों ने समझ पाया हो, पर आँखों से देखने वालों ने यह अनुभव अवश्य किया होगा कि स्वामीजी जो कुछ बोल रहे हैं, वह अन्तर की गहराई से आ रहा है, वह मात्र व्याख्यान के लिए व्याख्यान नहीं है।

'गंगा गये गंगादास और जमना गये जमनादास' वाली बात वहाँ नहीं है। चाहे पचास व्यक्तियों की सभा हो, चाहे पचास हजार की; चाहे अपने हों, चाहे पराये;

वहाँ तो एक ही बात है और वह भी—पर और पर्याय से भिन्न केवल आत्मा की। गिरगिट का सा रंग बदलने वाले तथाकथित आध्यात्मिक प्रवक्ताओं के समान 'अन्दर कुछ और बाहर कुछ'—वाली बात उनमें आप कभी नहीं पायेंगे।

उनकी वाणी में किसी का विरोध नहीं आता, मात्र अपना अविरोध झरता है। वे अपनी बात, अनुभव की बात, आगम की बात अपने तरीके से सबके सामने रखते हैं। कौन क्या गलत कह रहा है, गलत कर रहा है; यह जानने के लिए, सुनने के लिए, कहने के लिए उनके पास समय नहीं है; सत्य का अनुभव करने और निरूपण करने से अवकाश मिले तब तो यह सब किया जाय। यह तो उनका काम है, जिन्हें सत्य से कोई सरोकार नहीं है, धर्म जिनका धन्धा है। धर्म को जीवन मानने वाले स्वामीजी इन सब बातों से बहुत दूर हैं।

यदि आत्मज्ञान का नाम ही अध्यात्म है तो स्वामीजी सच्चे अर्थों में आध्यात्मिक सत्पुरुष हैं, क्योंकि उनका चिन्तन, मनन, कथन, अनुभवन सब कुछ आत्मामय है। अधि=जानना, आत्म=आत्मा को - इस प्रकार अपने आत्मा को जानना ही अध्यात्म हुआ। अध्यात्म की उक्त परिभाषा पू० स्वामीजी पर पूरी तरह घटित होती है।

पुण्य और पवित्रता का सहज संयोग कलिकाल में सहज सम्भव नहीं है। जिनके जीवन में पवित्रता पाई जाती है, कोई उनकी बात नहीं सुनता और जिनके समक्ष लाखों मानव झुकते हैं, जिनको सर्व सुविधाएँ सहज

उपलब्ध हैं, वे पवित्रता से बहुत दूर दिखाई देते हैं- जैसे पावनता से उनका कोई सम्बन्ध ही न हो, उन्हें पवित्रता से कोई सरोकार नहीं। स्वामीजी एक ऐसे युग-पुरुष हैं जिनमें पुण्य और पवित्रता का सहज संयोग है। उनमें सोना सुगंधित हो उठा है।

वे अन्तर्बाह्य व्यक्तित्व के धनी महापुरुष हैं। एक ओर जहाँ स्वच्छ शुभ्र श्वेत परिधान से सर्वांग ढ़की एकदम गोरी-भूरी विराट काया, उस पर उगते हुए सूर्य-सा प्रभा-सम्पन्न उन्नत भाल, तथा कभी अन्तर्मग्न गुरुगंभीर एवं कभी अन्तर की उठी आनन्द हिलोर से खिलखिलाता गुलाब के विकसित पुष्प सदृश ब्रह्मतेज से दैदीप्यमान मुखमण्डल—व्याख्यान में उनकी वाणी से कुछ भी न समझ पाने वाले हजारों श्रोताओं को मंत्रमुग्ध किए रहता है; वहीं दूसरी ओर स्वभाव से सरल, संसार से उदास, धुन के धनी, निरन्तर आत्मानुभव एवं स्वाध्याय में मग्न, सब के प्रति समताभाव एवं करुणाभाव रखने वाले, विनम्र पर सिद्धान्तों की कीमत पर कभी न झुकने वाले, अत्यन्त निस्पृही एवं दृढ़ मनस्वी, गणधर जैसे विवेक के धनी, वज्र से भी कठोर, पुष्प से भी कोमल उनका आन्तरिक व्यक्तित्व बड़े-बड़े मनीषियों के आकर्षण का केन्द्र बना रहता है।

काठियावाड़ (आधुनिक गुजरात) की मिट्टी में ही न मालूम ऐसी क्या विशेषता है, जिसने एक ही शताब्दी में ऐसे दो महापुरुषों को जन्म दिया है, जिन्होंने लौकिक और अलौकिक दोनों क्षितिजों के छोर पा लिए हैं।

पहिले थे महात्मा गांधी और दूसरे हैं कानजी स्वामी। एक ने हमें लौकिक स्वतंत्रता का मार्ग ही नहीं दिखाया, अपितु स्वतन्त्रता भी प्रदान की है। दूसरा हमें पारलौकिक, अलौकिक, आध्यात्मिक स्वतंत्रता का पथ प्रदर्शन कर रहा है, स्वयं उस पर चल रहा है, दूसरों को चलने का प्रेरणा-स्रोत बन रहा है। एक साबरमती का संत कहा जाता था तो दूसरा सोनगढ़ का संत कहा जाता है।

एक बार इन दोनों महात्माओं का मिलन भी हुआ था, जब गाँधीजी राजकोट में स्वामीजी के प्रवचनों में पधारे थे।

सोनगढ़ आज तीर्थधाम बन गया है। जहाँ-जहाँ सन्तों के पग पड़ते हैं, वह स्थान तीर्थधाम बन जाते हैं। सोनगढ़ क्यों न तीर्थधाम बने? वहाँ तो आध्यात्मिक सत्पुरुष चालीस वर्ष से आत्म-साधना कर रहे हैं। आत्म-साधना और आत्म-आराधना का पथ प्रशस्त कर रहे हैं।

आज ऐसा कौन जैन है जो गिरनार और शत्रुंजय (पालीताना) गया हो और सोनगढ़ न गया हो तथा वहाँ पर पहुँच कर भव्य मानस्तंभ, विशाल जिन मन्दिर, सुन्दर समवशरण मंदिर एवं नवनिर्मित अद्वितीय परमागम मंदिर के दर्शन कर कृतार्थ न हुआ हो; जिसने शहरी कोलाहल से दूर, शान्त और निर्जन इस प्रान्त में आत्मा के नांद की गूंज न सुनी हो एवं रंग-राग और भेद से भिन्न आत्मा की बात जिसके कान में न पड़ी हो।

आज सोनगढ़, समयसार और कानजी स्वामी पर्यायवाची हो गये हैं। सोनगढ़ में कुन्दकुन्दाचार्य के पंच

परमागमों को परमागम मंदिर के संगमरमर के पाटियों पर उत्कीर्ण करा दिया गया है। सर्वश्रेष्ठ दिगम्बराचार्य का इससे बड़ा स्मारक और क्या होगा? पर कानजी स्वामी तो कुन्दकुन्द और उनके समयसार के जीवन्त-स्मारक हैं। क्यों न हों? समयसार ने उनके जीवन को जो बदल डाला है।

समयसार पाकर उन्होंने क्या नहीं पाया, क्या नहीं छोड़ा? सर्वस्व पाया और सर्वस्व छोड़ा। श्रीमद् रायचन्द्र ने समयसार लाकर देने को खोवा भर मुद्रायें दी थीं, पर कानजी स्वामी ने तो उसके लिये परम्परागत धार्मिक सम्प्रदाय ही नहीं; उसका गुरुत्व, गौरवपूर्ण जीवन, यश – यहाँ तक कि प्राणों तक का मोह भी छोड़ा।

वे प्राणों की बाजी लगाकर, प्राणों की कीमत पर दिगम्बर जैन हुए हैं। दिगम्बरों ने उन्हें क्या दिया? यदि दिगम्बरों ने उन्हें समयसार दिया, मोक्षमार्ग प्रकाशक दिया तो उन्होंने दिगम्बरों को समयसार का सार और मोक्षमार्ग प्रकाशक का मर्म दिया है। यदि उन्हें दिगम्बरों से एक समयसार मिला, एक मोक्षमार्ग प्रकाशक मिला तो उन्होंने समयसार और मोक्षमार्ग प्रकाशक दिगम्बरों के घर-घर तक पहुँचा दिया है।

कौन जानता था कि काठियावाड़ के छोटे से ग्राम उमराला में आज से ८७ वर्ष पूर्व वि० सं० १९४७ (गुजराती १९४६) की वैसाख सुदी २ रविवार के दिन जन्मा बालक कहान इतना महान् होगा।

श्वेताम्बर स्थानकवासी सम्प्रदाय में जन्मा बालक कहान बचपन से ही धार्मिक प्रवृत्ति का शान्त बालक था। माता उजमबाई और पिता मोतीचन्दजी श्रीमाल को एक ज्योतिषी ने बालक कहान के महापुरुष होने का स्पष्ट संकेत किया था, अतः उनका पुत्र-प्रेम सहज द्विगुणित हो गया था।

साधारण शिक्षा के उपरान्त उनके जन्म स्थान के ही निकटस्थ कस्बा पालेज में उनके बड़े भाई खुशालचन्दजी के साथ उन्हें भी दुकान पर बिठा दिया गया, पर उनका मन उसमें नहीं रमा। वे उदासवृत्ति से, पर कुशलता-पूर्वक, ईमानदारी और पूरी प्रामाणिकता के साथ कार्य करने लगे।

सोलह वर्ष की वय में एकबार उन्हें बड़ौदा को कोर्ट में जाना पड़ा। वहाँ उन्होंने समस्त सत्य को बड़े धैर्य और गम्भीरता के साथ रखा। न्यायाधीश पर उनकी सरलता, सहजता और स्पष्टवादिता का ऐसा असर हुआ कि बिना गवाह के ही उनकी बात को प्रमाण मानकर निर्णय दे दिया गया।

उठते यौवन में उन्होंने 'भक्त ध्रुव' आदि नाटक भी देखे। सामान्य युवकों का मन नाटकों के शृंगारिक प्रसंगों में ही अधिक रमा करता है पर उनका मन वैराग्यपोषक प्रकरणों में ही अधिक रमा करता था, जिसकी चर्चा वे आज भी बड़े ही भाव-विभोर हो, कभी-कभी अपने प्रवचनों में किया करते हैं।

अन्तर्व्यापार के अभिलाषी कहान का मन बाह्य व्यापार में न रमा। जब उनसे शादी का प्रस्ताव किया गया तो उन्होंने साफ-साफ कह दिया कि मुझे तो दीक्षा लेने का भाव है, मैं शादी नहीं करूँगा।

अरे····अरे···· ! उन्होंने दीक्षा लेने की मात्र बात नहीं कही, २२ वर्षीय उठते यौवन में ही उन्होंने स्थानकवासी साधु हीराचन्दजी के पास वि० सं० १९७० में अगहन सुदी ९ रविवार के दिन बड़े ही ठाठ-बाट से दीक्षा ले ली; पर दीक्षा-जुलूस में हाथी पर सवार होते समय दीक्षा-वस्त्र फट गया। उस समय तो किसी की समझ में कुछ न आया, पर अब कभी-कभी स्वामीजी स्वयं कहते है कि मुझे तभी शंका हो गई थी कि सच्चा साधुपना यह नहीं है।

यद्यपि गृहस्थावस्था में भी आपने श्वेताम्बर शास्त्रों का अध्ययन-मनन किया था तथापि बाद में दीक्षित होने पर उनका बहुत गम्भीर अध्ययन किया, पर उनके हाथ कुछ भी न लगा। उन्हें ऐसा लगा कि जो मेरा प्राप्तव्य है, वह इनमें नहीं। यद्यपि वे उन पर व्याख्यान करते, प्रवचन करते और हजारों लोग मंत्रमुग्ध भी हो जाते तथापि वे कुछ रिक्तता, कमी अनभव करते रहते।

स्थानकवासी सम्प्रदाय में उनकी महान विद्वान्, लोकप्रिय प्रवचनकार और कठोर-साधक साधु के रूप में प्रतिष्ठा थी। उनके भक्तगण उन पर मुग्ध थे, पर वे नहीं; वे कुछ और खोज रहे थे।

अचानक वि० सं० १९७८ में समयसार उनके हाथ लगा, मानो निधि मिल गई। जिसकी खोज थी, वह पा लिया वे। उसे लेकर एकान्त जंगल में चले गये। उसके पढ़ने में वे ऐसे मग्न हो गये कि जाता समय ध्यान ही न रहा।

उनका अन्तर पुकार उठा कि 'सत्य पंथ निर्ग्रन्थ दिगम्बर ही है' पर.....। फिर वि० सं० १९८२ में मोक्षमार्ग प्रकाशक हाथ लगा। यह ग्रन्थ भी स्वामीजी को अपूर्व लगा, यह ग्रन्थराज अपूर्व है भी। यह उनको इतना मन भाया कि इसका सातवाँ अध्याय तो उन्होंने अपने हाथ से लिख लिया, जो आज भी सुरक्षित है।

यह अन्तर्वाह्य का संघर्ष वि० सं० १९९१ तक चलता रहा। आखिरकार इस नरसिंह ने उसी वर्ष चैत्र शुक्ला त्रयोदशी को साधारण गाँव सोनगढ़ में बाड़ा तोड़ ही डाला, मुंहपट्टी उतार फेंकी और अपने को दिगम्बर श्रावक घोषित कर दिया। क्या ही विचित्र संयोग है कि यह शुभकार्य महावीर जयन्ती के शुभ दिन ही संपन्न हुआ।

इस परिवर्तन से संप्रदाय में खलबली मच गई। चारों ओर से भय और प्रलोभनों के पासे फेंके गये, परसब बेकार साबित हुए। धर्मान्धों ने क्या नहीं कहा और क्या नहीं किया, पर 'मनस्वी कार्यार्थी न गणयति दुःख सुःखं'-की नीति का अनुसरण करते हुए स्वामीजी अडिग रहे।

कुछ दिनों तक वे सोनगढ़ के समीप टेकड़ी पर स्थित एक अनन्य अनुयायी के टूटे-फूटे मकान में रहे, जो आज

भी उसी हालत में विद्यमान है और जिसे गुरुदेव स्वयं कभी-कभी अपने अनुयायियों को बड़े ही प्रेम से उँगली के ईशारे से दिखाया करते हैं।

साम्प्रदायिकता के मोह में हो गये विरोधियों की कषाय जब शान्त होने लगी तो वे पुण्य और पवित्रता के धनी गुरुदेव के दर्शनार्थ झुंड के झुंड आने लगे। कुछ यह देखने भी आते थे कि अब कैसा क्या चल रहा है? पर उनके समक्ष आकर, उनके आचरण व व्यवहार को देख एवं अभूतपूर्व प्रवचनों को सुनकर नत-मस्तक हुए बिना नहीं रहते।

कुछ समय बाद जन्मजात दिगम्बर जैन भी उनके पास पहुँचने लगे। कुछ प्रेम से, कुछ भक्ति से, कुछ कुतूहल से; पर जो भी उनके पास पहुँचता, उनका हुए बिना नहीं रहता, उनके अन्तर्वाह्य व्यक्तित्व से प्रभावित हुए बिना नहीं रहता। उनकी वाणी में तो कुन्दकुन्द के अमृत का जादू है ही, पर उनका वाह्य व्यक्तित्व भी कम आकर्षक नहीं है।

उनके इस आध्यात्मिक आकर्षण से विरोधी खेमों में खलबली-सी मच गई जो आज भी देखी जा सकती है। 'जो वहाँ जायगा, उनका हो जायगा' इस भय से आशंकित और आतंकित होकर वहाँ न जाने की लोगों को प्रतिज्ञाएँ दिलाई जाने लगीं, पर तूफान को कौन रोक सकता है? अगर गायक कवि 'युगल' की "लो रोको तूफान चला रे, पाखण्डों के महल ढहाता, लो रोको तूफान चला रे।"– यह पंक्तियाँ आज भी चुनौती दे रही हैं।

आध्यात्मिक क्रान्ति का यह सूत्रधार आज जहाँ भी जाता है, विरोधी भी उसका स्वागत करते हैं, सम्मान करते हैं, अभिनन्दन करते हैं। चार-चार बार सम्पूर्ण भारत की ससंघ यात्राएँ की हैं इस महापुरुष ने। पचास से अधिक विशाल जिन-मन्दिरों का निर्माण हुआ है, इसकी पावन प्रेरणा से। बीस लाख से ऊपर साहित्य भी प्रकाशित हुआ है इसकी कृपा से। गाँव-गाँव में तत्त्व-चर्चा के केन्द्र स्थापित हो गये हैं। छोटे-छोटे से गाँवों में आप सामान्य व्यापारियों को निश्चय-व्यवहार, निमित्त-उपादान की चर्चा करते पायेंगे। यह सब इस महामानव का ही प्रभाव है कि जिसने आज के इस भौतिकतावादी युग में आध्यात्मिक वातावरण बना दिया है।

वे इस युग के अद्वितीय महापुरुष हैं। ऐसा कोई दूसरा महापुरुष बताएँ, जिसने इनके समान अनंत प्रशंसाओं और निन्दाओं का आज तक उत्तर भी न दिया हो और जो जगत् की प्रशंसा और निन्दा से इनके समान अप्रभावित रहकर अपनी गति से ही चलता रहा हो, जिसने समय (शुद्धात्मा) और समय (टाइम) की ऐसी साधना की हो कि जिसमें समयसार प्रतिबिम्बित हो उठा हो और लोग जिसकी दिनचर्या से अपनी घड़ियाँ मिला लेते हों।

उस अन्तर्बाह्य व्यक्तित्व के धनी एवं आध्यात्मिक साधनारत महापुरुष को शत-शत प्रणाम। ●

पूज्य श्री कानजी स्वामी

मूल्यांकन और उपलब्धियाँ

यह तो एक निर्विवाद सत्य है कि पूज्य श्री कानजी स्वामी इस सदी के एक आध्यात्मिक क्रांतिकारी महापुरुष हैं। दिगम्बर जैन समाज के विगत चार सौ वर्षों के इतिहास में कविवर पंडित बनारसीदासजी और महा-पंडित टोडरमलजी को छोड़कर कानजी स्वामी के अतिरिक्त और किसी ने इतनी विशाल आध्यात्मिक क्रान्ति नहीं की है।

मिथ्यात्व, विषय-कषाय आदि बहिर्द्रव्य के निरालंबन से आत्मा में अनुष्ठान होना अध्यात्म है[1] सुषुप्त वातावरण में उथल-पुथल मचा देने वाली जागृति को क्रान्ति कहते हैं और सत्यासत्य का निर्णय कर सही मार्ग पर दृढ़ निश्चय के साथ बढ़ता रहे उसे महापुरुष कहते हैं।

उपर्युक्त तीनों बातें पूज्य श्री स्वामीजी में पाई जाती हैं, अतः वे सच्चे अर्थों में महान क्रान्तिकारी आध्यात्मिक महापुरुष हैं। उक्त आध्यात्मिक क्रान्ति से आपने अपना पथ तो प्रशस्त किया ही; प्रवचनों के माध्यम से उक्त पथ को आलोकित कर जैन समाज में एक अभूतपूर्व क्रान्ति कर लाखों लागों को आत्मार्थी बना दिया।

---

१. परमात्मप्रकाश, अध्याय २, दोहा १५४ की टीका

उनके क्रान्तिकारी उपदेशों से जहाँ एक ओर समाज आह्लादित था; वहीं जड़शरीर की क्रिया और रागभाव में धर्म मानने वाले तथाकथित धर्मात्माओं में खलबली मच गई और यत्र-तत्र छुटपुट उनका विरोध भी होने लगा। कहीं-कहीं उसने उग्ररूप भी धारण किया' किन्तु 'न्यायात्पथः प्रविचलन्ति पदं न धीराः'– की नीति के अनुसार आप अडिग रहे।

पूज्य स्वामीजी ने स्थानकवासी सम्प्रदाय में जन्म लिया और उसी सम्प्रदाय के साधु बनकर उनके ग्रंथों का खूब अध्ययन किया' किन्तु वहाँ कुछ हाथ न लगा। तब दिगम्बर सम्प्रदाय के ग्रन्थों का सूक्ष्मता से अध्ययन कर उसमें प्रतिपादित तत्त्व को आगम, युक्ति और अनुभव से प्रमाणित कर अन्ततः सनातन दिगम्बर धर्म को एक सामान्य ब्रह्मचारी के रूप में स्वीकार किया।

फलस्वरूप साम्प्रदायिक तत्त्वों के तीव्र रोष एवं विरोध का कई वर्षों तक सामना करना पड़ा। दिगम्बर समाज में भी कुछ निहितस्वार्थी लोग आपका विरोध करते रहे। बढ़ते-बढ़ते वह विरोध इस समय अपनी चरम सीमा पर है। ऐसी स्थिति में भी पूज्य स्वामीजी सुमेरु की तरह अडिग हैं।

आपने अपना मार्ग स्वयं बनाया है और उसे अनुयायियों के लिए भी सुगम कर दिया है। विषम परिस्थितियों में भी आपने यह सब-कुछ कर दिखाया। यह आपके पौरुष का प्रत्यक्ष प्रमाण है।

आपके द्वारा सम्पन्न क्रान्तिकारी कार्यों का विवरण एवं समाज को उनसे प्राप्त उपलब्धियों की संक्षिप्त जानकारी प्रस्तुत कर रहा हूँ, जिससे समाज उनके अमूल्य प्रदेय का मूल्यांकन कर सके।

दिनचर्या

सोनगढ़ में (सामान्य दिनों में) सामूहिक रूप से होने वाले कार्यक्रम निम्नानुसार रहते हैं :—

प्रातःकाल	७ से ८	जिनमन्दिर में दर्शन-पूजन आदि
	८ से ९	पूज्य स्वामीजी का प्रवचन
	९ से १०	बालकों तथा प्रौढ़ों के लिए कक्षायें
मध्याह्न	११ से २	श्रीरामजी भाई द्वारा प्रौढ़ कक्षा
	३ से ४	पूज्य स्वामीजी का प्रवचन
	४ से ४$\frac{3}{4}$	जिनमन्दिर में जिनेन्द्रभक्ति
सायं	६ से ६$\frac{3}{4}$	श्री खीमचंद भाई के साथ तत्त्वचर्चा
	७ से ७$\frac{3}{4}$	पूज्य स्वामीजी के साथ तत्त्वचर्चा
	८ से ९	विविध विद्वानों द्वारा गोष्ठियाँ

उक्त दिनचर्या में ऋतु के अनुसार थोड़ा-बहुत परिवर्तन होता रहता है तथा पर्व के दिनों में भी विशेष-कार्यक्रम होने से परिवर्तन हो जाता है।

प्रवचन-स्वाध्याय

वहाँ पर रहने वाले सभी मुमुक्षुजन चारों अनुयोगों के ग्रंथों का निरन्तर स्वाध्याय करते रहते हैं। सबके घरों में धार्मिक ग्रंथों के निजी पुस्तकालय हैं। पूज्य स्वामीजी द्वारा शास्त्र-सभा में चारों अनुयोगों के ग्रंथों पर प्रवचन

होते रहते हैं। अब तक गुरुदेव के प्रवचन जिन ग्रन्थों पर हुए हैं, उनमें से कुछ इस प्रकार हैं :—

श्री षट्खण्डागम भाग १, समयसार, प्रवचनसार, पञ्चास्तिकाय, अष्टपाहुड़, परमात्मप्रकाश, नियमसार, कार्तिकेयानुप्रेक्षा, पद्मनंदिपंचविंशतिका, समाधिशतक, तत्त्वार्थसार, आत्मानुशासन, वृहद्द्रव्यसंग्रह, योगसार (आचार्य अमितगति), इष्टोपदेश, समयसार नाटक, मोक्षमार्ग प्रकाशक, तत्त्वज्ञान तरंगिणी, सम्यग्ज्ञानदीपिका, परमअध्यात्मतरंगिणी, अनुभवप्रकाश, भक्तामर स्तोत्र, योगसार (योगीन्द्रदेव), छहढाला, समयसार कलशटीका, आत्मसिद्धि (श्रीमद् रायचंद्र), पुरुषार्थसिद्धियुपाय, द्वादशानुप्रेक्षा, विषापहार स्तोत्र, दशलक्षण धर्म, उपादान-निमित्त दोहे, रहस्यपूर्ण चिट्ठी, उपादान-निमित्त चिट्ठी, परमार्थ वचनिका, सत्तास्वरूप।

पूजन व मंडल-विधान

वैसे तो वहाँ प्रतिदिन जिनेन्द्रपूजन एवं भक्ति के कार्यक्रम होते हैं, किन्तु पर्व के दिनों में विशेष उत्सव के साथ पूजन और मंडल-विधान किये जाते हैं। समय-समय पर हुए मंडल-विधानों में कुछ इस प्रकार हैं :—

श्री नन्दीश्वर पूजन-विधान, अकृत्रिम जिनशाश्वत जिनालय पूजन-विधान, ढाईद्वीप मंडल पूजन-विधान, तेरहद्वीप मंडल पूजन-विधान, चौसठऋद्धि मंडल पूजन-विधान, दशलक्षण धर्म पूजन-विधान, रत्नत्रय मंडल पूजन-विधान, बीस विरहमान तीर्थङ्कर पूजन-विधान, चौबीस तीर्थङ्कर पूजन-विधान, अष्टोत्तर सहस्रनाम मंडल पूजन-विधान, पंच परमेष्ठी पूजन-विधान, सिद्धचक्र मंडल पूजन-विधान।

ब्रह्मचर्याश्रम

गुरुदेव के उपदेशों से प्रभावित होकर सैंकड़ों भाई-बहनों ने उपलब्ध विषय-कषायों को तिलाञ्जलि देकर आजीवन ब्रह्मचर्य धारण किया है। इनमें बहुत से भाई सपत्नीक ब्रह्मचर्य से रहते हैं। बहुत से बालब्रह्मचारी एवं बालब्रह्मचारिणी भी हैं। अभी वहाँ पूज्य श्री चंपा बहन व शांता बहन की छत्रछाया में ५० ब्रह्मचारिणी बहनें रहती है। १५ बहनें बाहर रह कर धर्म-आराधना कर रही हैं। बहनों के लिए वहाँ एक 'कुमारिका ब्रह्मचर्याश्रम' भी है।

सभी ब्रह्मचारी भाई-बहन अपने-अपने खर्चे से रहते हैं। प्रायः सभी बहनें सम्पन्न घरानों की व उच्च शिक्षा प्राप्त हैं। कुछ ग्रेज्युऐट बालब्रह्मचारिणी बहनों के नाम इस प्रकार हैं :—

निर्मला बहन भायाणी M.A.,B.T.; कोकिला बहन, खारा B.A.; सुमित्रा बहन भाईलाल B.A.; शारदा बहन संघाणी B.A.; पुष्पलता बहन झांझरी, उज्जैन B.A.; ज्योत्सना बहन, राजकोट B.A.; मालती बहन, भावनगर B.A.; सुबोध बहन, खण्डवा B.A., B.T.; ललिता बहन जामनगर B.A.; इच्छा बहन, राजकोट B.A.; जिनमती बहन, खंधार B.A.; हेमलता बहन, राजकोट B.A.; मधु बहन जोवालिया B.A.।

जिनमन्दिरों का निर्माण

सौराष्ट्र (गुजरात) में प्रायः दिगम्बर जिनमंदिर थे ही नहीं। जब पूज्य स्वामीजी के सदुपदेश से प्रभावित

होकर वहाँ हजारों लोग दिगम्बर जैन हो गये ,बत दिगम्बर जिनमन्दिरों की भी आवश्यकता अनुभव की जाने लगी। फलस्वरूप यत्र-तत्र अभी तक लाखों-लाखों की लागत के ६१ विशाल जिनमन्दिरों का निर्माण हो चुका है। वीर निर्वाण संवत् के साथ उनकी सूची निम्नानुसार है :—

सोनगढ़ (२४६७), सोनगढ़ (समवशरण मंदिर, २४६८), बीछियाँ (२४७५), लाठी (२४७५), राजकोट (२४७६), सोनगढ़ (मानस्तम्भ, २४७६), पोरबन्दर (२४८०), मोरबी (२४८०), बांकानेर (२४८०), लीवंडी (२४८४), बम्बई मुम्बादेवी रोड (२४८५), जामनगर (२४८७), जोरावरनगर (२४८६), बम्बई दादर (२४६०), राजकोट (समवशरण, २४६१), राजकोट (मानस्तम्भ, २४६१), मोटा आंकड़िया (२४६३), हिम्मतनगर (२४६३), अहमदाबाद (२४६५), बम्बई मलाड (२४६५), बम्बई घाटकोपर (२४६५), रणासण (२४६६), अंतरिक्ष पार्श्वनाथ (२४६६), भावनगर (२४६६), फतेहपुर (२४६८), फतेपुर (समवशरण, २४६८), सोनगढ़ (परमागम मन्दिर, २५००), भोपाल पिपलानी (२५०१) वंगलोर (२५०१), बढ़वाण सिटी (२५०२), मद्रास (२५०३) नैरोबी (२५०६), बड़ौदा (२५०६)।

उक्त विशाल जिनालयों के निर्माण के साथ उक्त स्थानों पर पंचकल्याणक प्रतिष्ठा भी गुरुदेव की छत्र-छाया में सम्पन्न हुई है। इनके अतिरिक्त निम्नलिखित मन्दिर वेदी-प्रतिष्ठा-महोत्सवपूर्वक स्थापित हुये हैं :—

सुरेन्द्रनगर (२४८०), बढ़वाण सिटी (२४८०), राणपुर (२४८०), उमराला (२४८०), वोटाद (२४८०), सोनगढ़

(परिवर्द्धित २४८३), पालेज (२४८३), खैरागढ़ (२४८५), बड़िया (२४८६), जेतपुर (२४८६), गोंडल (२४८६), सावर-कुण्डला (२४८७), दहेगांव (२४८६), भोपाल (२४८६), रखियाल (२४६०), उज्जैन (२४६१), जसदण (२४६३), जयपुर (टोडरमल स्मारक भवन, २४६३), उदयपुर (२४६३), मक्सी पार्श्वनाथ (२४६५). जलगांव (२४६६), कानांतलाब (२४६६), अमरेली (२४६८), रामपुरा (२४६८), बामणवाड़ा (२४६८), जांबूड़ी (२५००), गढडा (२५००), जूनागढ़ (मानस्तम्भ, २५०१), खुरई (मानस्तम्भ, २५०१), सनावद (२५०१)।

सोनगढ़ की धार्मिक संस्थाएं

पूज्य श्री कानजी स्वामीजी के पधारने के पूर्व सोनगढ़ में एक भी दिगम्बर जैन नहीं था, और न कोई धर्म-स्थान ही था। स्वामीजी को भी एक साधारण झोंपड़ी जैसे मकान में एक भाई ने स्थान दिया था। स्वामीजी के प्रताप से आज जंगल में मंगल होकर वहाँ करोड़ों की सम्पत्तियाँ खड़ी हो गई हैं और सोनगढ़ एक तीर्थधाम बन गया है तथा लगभग ३०० घर दिगम्बर जैनों के बस गये हैं। सोनगढ़ में आज अनेक संस्थाएँ प्रायः अपने निजी विशाल भवनों के साथ संचालित हैं, जिनकी वर्तमान लागत लगभग एक करोड़ रु० है। इनके नाम इस प्रकार हैं :—

श्री दिगम्बर जैन स्वाध्याय मंदिर, खुशाल जैन अतिथि गृह, दि० जैन अतिथि सेवासमिति, दि० जैन श्राविकाशाला, गोगादेवी

दि० जैन श्राविका ब्रह्मचर्याश्रम, कुन्दकुन्द मुमुक्षु निवास, मनफूला स्वाध्याय भवन, दि० जैन सरस्वती भवन, दि० जैन धर्मशाला, दि० जैन विद्यार्थी गृह, कहान दि० जैन कोऑपरेटिव हाउसिंग सोसायटी नं० १, कहान दि० जैन कोऑपरेटिव हाउसिंग सोसायटी नं० २, श्री सोनगढ़ जलप्रदाय योजना, कहान अकाल राहत फंड, भगवान कुन्दकुन्द कहान शास्त्रमाला, पूज्य श्री कानजी स्वामी विश्रांतिगृह ट्रस्ट।

उपर्युक्त संस्थाओं में उनके नाम के अनुसार तत्त्व-प्रचार और समाज सेवा का काम विशाल पैमाने पर निरन्तर होता रहता है।

सम्पूर्ण भारत की यात्राएं

पूज्य स्वामीजी ने छोटी-मोटी तीर्थयात्राओं के अतिरिक्त उत्तर से दक्षिण तक और पूर्व से पश्चिम तक सम्पूर्ण भारतवर्ष की दो विशाल यात्राएँ भी कीं। सारे भारतवर्ष में ऐसा कोई दि० जैन तीर्थ बाकी न होगा जहाँ कि गुरुदेव ने दो-दो बार यात्रा न की हो। उनकी यात्रा में हजारों भाई-बहन साथ रहे हैं, जिनके द्वारा प्रायः सभी तीर्थक्षेत्रों को विशाल धनराशि का दान दिया गया है। तीर्थों के रास्ते में आने वाले प्रमुख नगरों में भी वहाँ की समाज के आमंत्रण पर गुरुदेव पधारे हैं। सर्वत्र उनका हार्दिक स्वागत हुआ है एवं उनके प्रवचनों से सारे देश ने लाभ उठाया है।

ये यात्राएँ बड़ी ही व्यवस्थितरूप से—मोटर-बसों, मिनी-बसों व कारों द्वारा तीन-तीन माह में सम्पन्न हुई हैं। इनमें एक-एक मिनट का टाइम फिक्स रहता था।

इन यात्राओं के माध्यम से सारे भारत में गुरुदेव का सन्देश फैल गया।

पहली यात्रा वि० सं० २०१३ में और दूसरी यात्रा वि० सं० २०२० में सम्पन्न हुई थी। इसके अतिरिक्त आपने एक यात्रा वि० सं० २०१५ में केवल दक्षिण भारत की भी की।

जिन तीर्थों की पूज्य स्वामीजी ने संघ सहित वंदनाएँ की हैं, उनमें से कुछ प्रमुख तीर्थ इस प्रकार हैं :—

सम्मेदशिखरजी, गिरनार, बड़वानी, पावागिरी, ऊन, सिद्धवरकूट, मक्सी-पार्श्वनाथ, बजरंगगढ़, थूबौनजी, चन्देरी, देवगढ़, सौरीपुर-बटेश्वर, अयोध्या, बनारस, चन्द्रपुरी, सिंहपुरी, राजगिरी, कुण्डलपुर, नालन्दा, पावागिरी, गुणावा, नबादा, चम्पापुरी, मन्दारगिरी, खण्डगिरी-उदयगिरी, आबू, तारंगा, गजपन्था, मांगीतुंगी, केसरियाजी, हूमच, कुन्दाद्री, मूडबद्री, जैनबद्री (श्रवणबेलगोला), कारकल, बेणूर, कोन्नूरहिल, कुन्थलगिरी, एलौरा, अजन्ता, शिरपुर (अन्तरिक्ष पार्श्वनाथ), मुक्तागिरी, रामटेक, मढियाजी, कुण्डलगिरी सिद्धक्षेत्र, द्रोणगिरी, खजुराहो, पपौराजी, आहारजी, चांदखेड़ी, पदमपुरी, महावीरजी, हस्तिनापुर।

इन यात्राओं के बीच तथा स्वतंत्ररूप से भी धर्म-प्रभावनार्थ जिन-जिन नगरों में गुरुदेव पधारे, उनमें से कुछ नाम इस प्रकार हैं :—

बम्बई, दिल्ली, कलकत्ता, इन्दौर, भोपाल, जयपुर, बैंगलोर, मद्रास, उज्जैन, खण्डवा, बड़ौदा, सूरत, सनावद, गुना, शिवपुरी,

झांसी, ललितपुर, ग्वालियर, धौलपुर, आगरा, मथुरा, फिरोजाबाद, मैनपुरी, कानपुर, लखनऊ, बनारस, डालमियानगर, आरा, पटना, गया, इलाहाबाद, सहारनपुर, अलवर, अजमेर, लाडनूं, सुजानगढ़, कुचामन, किशनगढ़, ब्यावर, शिवगंज, अहमदाबाद, मैसूर, हैदराबाद, सोलापुर, जलगांव, मलकापुर, वाशीम, कारंजा, अमरावती, नागपुर, डोंगरगढ़, खैरागढ़, सिवनी, जबलपुर, दमोह, टीकमगढ़, बारां, कोटा, बूंदी, नीमच, चित्तौड़, उदयपुर, ईडर, फतेहपुर, तलौद, रखियाल, देहगांव, कलौल, सिहौर, भावनगर, अशोकनगर, मूंगावली, विदिशा, राघौगढ़, सोनकच्छ, नरसिंहगढ़, कोलारस, बबीना, तालवेहट।

आत्मधर्म

पूज्य श्री कानजी स्वामी ने आचार्य परम्परा द्वारा समागत भगवान महावीर के सिद्धान्तों का स्पष्टीकरण ही किया है। उनके द्वारा उद्घाटित जिनागम का मर्म जन-जन तक पहुँचे—इस उद्देश्य से वि० सं० २००० से गुजराती तथा २००१ से हिन्दी मासिक पत्रिका आत्मधर्म का प्रकाशन प्रारम्भ किया गया था। तत्पश्चात् यह सन् १९७७ से मराठी में और १९७८ से कन्नड़ एवं तमिल में भी प्रकाशित होने लगा है। इस समय आत्मधर्म के हिन्दी में ६८००, गुजराती में ४०००, मराठी में १५००, कन्नड़ में १००० तथा तामिल में ५०० ग्राहक हैं। हिन्दी, मराठी, कन्नड़ एवं तामिल आत्मधर्म के सम्पादक डॉ० हुकमचन्द भारिल्ल हैं तथा यह क्रमशः जयपुर, बम्बई, बेंगलोर एवं मद्रास से प्रकाशित होता है। गुज-

राती आत्मधर्म के सम्पादक डॉ० चन्दुभाई टी. कामदार हैं तथा यह सोनगढ़ से प्रकाशित होता है।

सत्साहित्य प्रकाशन

स्वामीजी के सदुपदेशों से प्रेरणा पाकर देश के कोने-कोने से करोड़ों की संख्या में सत्साहित्य का प्रकाशन हुआ है, जिसका पूरा विवरण देना तो सम्भव नही है, किन्तु कुछ प्रमुख जानकारी निम्नानुसार है :—

प्रकाशक	स्थान	प्रतियां
श्री कुन्दकुन्द कहान जैन शास्त्र माला	सोनगढ़	११ लाख
श्री पंडित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट	जयपुर	१० लाख
श्री मीठालाल महेन्द्रकुमार सेठी ग्रंथमाला	जयपुर	१ लाख
श्री पाटनी दि० जैन ग्रंथमाला	मारोठ	१५ हजार
श्री महावीर निर्वाणोत्सव प्रकाशन (बालोपयोगी)	सोनगढ़	१। लाख
श्री वीतराग सत्साहित्य प्रकाशक ट्रस्ट	भावनगर	६८ हजार
श्री दि० जैन मुमुक्षु मंडल	बम्बई	२५ हजार
श्री ब्र० दुलीचन्द जैन ग्रंथमाला	इन्दौर	८ हजार
श्री वीतराग-विज्ञान साहित्य प्रकाशन	आगरा	६० हजार
श्री कुन्दकुन्द कहान परमागम प्रवचन ट्रस्ट	बम्बई	१५ हजार
अ० भा० जैन युवा फैडरेशन,	जयपुर	१४ हजार ६ सौ

शिक्षण शिविर

आत्मार्थी मुमुक्षुजनों की ज्ञानपिपासा की पूर्ति करने हेतु सोनगढ़ में वि० सं० १९९५ से शिविर लगना आरंभ हुए। विद्यार्थियों के लिए ग्रीष्मावकाश में तथा प्रौढ़वर्ग के लिए श्रावण मास में बीस-बीस दिन के शिविर प्रति

वर्ष लगते हैं—इन शिविरों में पूज्य स्वामीजी के प्रवचनों के अलावा जैन तत्त्वज्ञान के गंभीर विषयों का भी अभ्यास कराया जाता है। निवास एवं भोजन की सुन्दर एवं सुव्यवस्थित व्यवस्था ट्रस्ट की ओर से रहती है। इन दोनों शिविरों में प्रतिवर्ष सैंकड़ों व्यक्ति लाभ लेने आते हैं। श्रावण मास में लगने वाले शिविर में हिन्दी भाषी मुमुक्षु भाई बहुत संख्या में आते हैं। सन् १९८० में श्रावण मास में आयोजित शिविर में १६०० व्यक्तियों ने भाग लिया था।

इन शिविरों से कई अच्छे विद्वान् और प्रवक्ता तैयार हो गये, जिनके द्वारा गाँव-गाँव में स्वाध्याय-सभाएँ एवं गोष्ठियाँ चालू हो गयीं।

गाँव-गाँव में शिक्षण शिविर

इन शिविरों के माध्यम से जब तत्त्व की बात चारों ओर पहुँची तो गाँव-गाँव से उनके यहाँ शिविर लगाने की मांग आने लगी और शिविरों की यह शृंखला इतनी बढ़ी है कि उन सबकी तालिका यहाँ देना संभव नहीं है। फिर भी जिन स्थानों पर अनेक शिविर लग चके हैं या कई वर्षों से प्रतिवर्ष लग रहे हैं, उनसे से कुछ उल्लेखनीय नाम हैं :—श्री सम्मेदशिखरजी, श्री सोनागिरजी, इन्दौर विदिशा, फतेहपुर, मौ, अशोकनगर, ललितपुर, कोटा, भोपाल, तलोद, गुना, उज्जैन, जयपुर, बम्बई, कलकत्ता।

प्रवचनकार

उपरोक्त सभी कारणों से तत्त्वज्ञान की पिपासा जैसे-जैसे बढ़ती गई, प्रवचनकारों की मांगें भी बढ़ती गई।

वैसे तो बारहमास प्रवचनकार सारे देश में जाते रहते हैं, किन्तु पर्यूषण में प्रवचनकारों की मांग विशेष हो जाती है। प्रतिवर्ष शताधिक प्रवचनकार पर्यूषण में सोनगढ़ की ओर से समाज के अत्यन्त आग्रहपूर्ण आमंत्रण आने पर सारे भारत में भेजे जाते हैं। सभी प्रवचनकार निःस्वार्थ भाव से ये सेवाएँ प्रदान करते हैं।

सन् १९७७ एवं १९७८ में सोनगढ़ में प्रवचनकार प्रशिक्षण शिविर भी आयोजित किए गए, जिनमें शताधिक प्रवचनकारों ने भाग लिया। सन् १९८० में पर्यूषण पर्व के अवसर पर स्वाध्याय मन्दिर ट्रस्ट के आग्रह पर १३८ विद्वान प्रवचनार्थ विभिन्न स्थानों पर गए थे।

पंडित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट

ट्रस्ट के विशाल भवन का निर्माण पूज्य स्वामीजी के उपदेश से प्रभावित एवं आचार्यकल्प पंडित टोडरमलजी के प्रति भक्तिभाव से प्रेरित श्री सेठ पूरनचंद्रजी गोदीका के पूर्ण सहयोग एवं सद्प्रयत्न से 'पंडित टोडरमल स्मारक भवन' के नाम से जयपुर में हुआ है। इसका उद्घाटन सन् १९६७ में पूज्य स्वामीजी के द्वारा हुआ था। इसके अन्तर्गत तत्त्वज्ञान के प्रचार का बहुत भारी काम हो रहा है। हिन्दी भाषी उत्तर भारत में तत्त्वप्रचार का यह एक केन्द्र बन गया है।

पंडित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट के नाम से यह एक स्वतंत्र रजिस्टर्ड ट्रस्ट है। इस ट्रस्ट की धार्मिक प्रवृत्तियों के संचालक डॉ. हुकमचंदजी भारिल्ल, शास्त्री, न्यायतीर्थ, साहित्यरत्न, एम. ए., पीएच. डी. हैं। पूज्य श्री स्वामीजी

के सदुपदेश से प्रभावित होकर ही डॉक्टर साहब की रुचि तत्त्वज्ञान के प्रति आकर्षित हुई थी और वे तत्त्वज्ञान का प्रचार-प्रसार करना ही अपने जीवन का ध्येय बनाकर दिन-रात उसी में दत्तचित्त रहते हैं।

इस ट्रस्ट का मुख्य ध्येय बालकों, युवकों एवं प्रौढ़ों में तत्त्वज्ञान का प्रचार करना ही है। तदर्थ सबसे प्रथम डॉ० साहब द्वारा बालोपयोगी सरल, सुबोध, धार्मिक पाठ्यपुस्तकें तैयार की गईं—जिनके नाम हैं बालबोध पाठमाला भाग १, २, ३; वीतराग-विज्ञान पाठमाला भाग १, २, ३; तत्त्वज्ञान पाठमाला भाग १ व २। ये पुस्तकें अत्यन्त उपयोगी एवं लोकप्रिय सिद्ध हुई हैं। इनके गुजराती, मराठी भाषा में अनुवाद भी हुए हैं और ये लाखों की संख्या में छप चुकी हैं।

जब ये पुस्तकें जगह-जगह धार्मिक पाठ्यक्रम के रूप में पढ़ाई जाने लगीं तो इनकी परीक्षा लेने के लिए वीतराग-विज्ञान विद्यापीठ परीक्षा बोर्ड की स्थापना की गई। यद्यपि प्रथम वर्ष १९६९ में सिर्फ ५७१ छात्र परीक्षा में बैठे तथापि नित्य बढ़ती हुई यह संख्या गत वर्ष इक्कीस हजार तक पहुँच गई है। विगत वर्षों में लाखों छात्र इससे लाभान्वित हो चुके हैं। गुजराती भाषी छात्रों की सुविधा के लिए गुजराती माध्यम से अहमदाबाद में इसकी शाखा काम करती है। मराठी माध्यम से परीक्षा लेने का कार्य शिरपुर शाखा करती है जिसकी स्थापना सन् १९७७–७८ में हुयी है।

धार्मिक शिक्षा को व्यवस्थित एवं वैज्ञानिक रूप देने के लिए धर्माध्यापकों को प्रशिक्षण देने की योजना भी तैयार की गई। प्रतिवर्ष ग्रीष्मकालीन एवं शीतकालीन अवकाशों के समय बीस-दिवसीय शिविरों के माध्यम से धर्माध्यापकों को प्रशिक्षण दिया जा रहा है। तत्संबंधी एक पुस्तक 'वीतराग-विज्ञान प्रशिक्षण निर्देशिका' भी प्रकाशित की है, जिसे डॉ० भारिल्ल साहब ने लिखा है। वे ही प्रशिक्षण के काम को सम्पन्न करते हैं और प्रमुख रूप से सहयोग देते हैं—उनके ही अग्रज श्रीमान् पंडित रतनचंदजी शास्त्री, विदिशा। अब तक इसके चौदह शिविर—(१) जयपुर (२) विदिशा (३) जयपुर (४) आगरा (५) विदिशा (६) मलकापुर (७) छिंदवाड़ा (८) कोटा (९) सोलापुर (१०) ललितपुर (११) प्रांतिज (१२) उदयपुर (१३) अजमेर (१४) वाशिम में लग चुके हैं, जिनमें २१६४ धर्माध्यापकों ने प्रशिक्षण प्राप्त किया है।

उक्त शिविरों में प्रशिक्षण प्राप्त धर्माध्यापकों से जैन तत्त्वज्ञान के प्रचार-प्रसार में बहुत बड़ा सहयोग मिल रहा है। इससे हजारों विद्वान्, अध्यापक और कार्यकर्त्ता तैयार हो गये हैं जो भारतवर्ष के गाँव-गाँव में जैनतत्त्व का अलख जगा रहे हैं।

ये अध्यापक अपने-अपने गाँव में जाकर एक घंटे की रात्रिकालीन धार्मिक वीतराग-विज्ञान पाठशालाएं खोल कर बालकों को तत्त्वज्ञान कराते हैं तथा उन्हें सदाचार

एवं नैतिक जीवन बिताने के लिए प्रेरित करते हैं। कई अच्छे प्रवचनकार भी बन गये हैं।

इसके अतिरिक्त ट्रस्ट के अन्तर्गत प्रकाशन का काम भी होता है। अभी तक यह विभिन्न धार्मिक पुस्तकों की सात लाख प्रतियाँ प्रकाशित कर चुका है। डॉ. भारिल्लजी द्वारा लिये गये ये प्रकाशन अत्यन्त ही लोकप्रिय सिद्ध हुए हैं। यही कारण है कि दस-दस हजार के एक-एक संस्करण एक-एक वर्ष के भीतर ही समाप्त हो जाते हैं। एक-एक पुस्तक के अनेक संस्करण निकल चुके हैं। कई संस्करणों की संख्या तो सात-आठ तक पहुँच चुकी हैं।

ट्रस्ट 'धार्मिक-पुस्तक विक्रय-विभाग' भी चलाता है, जिसके माध्यम से एक लाख रुपये से अधिक का धार्मिक साहित्य जन-जन तक प्रतिवर्ष पहुँच रहा है।

इसके अतिरिक्त भी तत्त्वप्रचार के अनेक कार्यों से ट्रस्ट का सीधा सम्बन्ध है और उनकी व्यवस्था में महत्त्वपूर्ण योगदान है। भारतवर्षीय वीतराग-विज्ञान पाठशाला समिति एवं श्री टोडरमल दि० जैन सि० महाविद्यालय का संचालन, आत्मधर्म (हिन्दी) मासिक एवं जैनपथ-प्रदर्शक (पाक्षिक) का प्रकाशन आदि अनेक धार्मिक गतिविधियों के कार्यालय ट्रस्ट भवन में ही हैं और उन सब का संचालन इसके माध्यम से ही होता है।

भारतवर्षीय वीतराग-विज्ञान पाठशाला समिति

एक तो समाज में जैन स्कूलें ही नहीं हैं और जहाँ हैं भी तो या तो उनमें धार्मिक शिक्षा दी ही नहीं जाती और

दी भी जाती है तो रुचिपूर्वक नहीं। अतः धार्मिक शिक्षा के प्रचार-प्रसार के लिए एक घंटे की रात्रिकालीन पाठशालाएँ खोलने का निश्चय किया गया। परिणामस्वरूप सत्र १९६८–६९ में भारतवर्षीय वीतराग-विज्ञान पाठशाला समिति की स्थापना हुई। इस समिति ने पंडित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट द्वारा संचालित शिविरों में प्रशिक्षित अध्यापकों के माध्यम से गाँव-गाँव में रात्रिकालीन वीतराग-विज्ञान पाठशालाएँ खोलने का क्रम आरम्भ किया। जो पाठशालाएँ आर्थिक दृष्टि से आत्मनिर्भर न हों, उनके लिए यथासंभव अनुदान देने की व्यवस्था भी की गई।

आज देश के कोने-कोने में ३४८ पाठशालाएँ सुचारु रूप से चल रही हैं। इनमें हजारों बालक धार्मिक शिक्षा प्राप्त कर रहे हैं। बहुत-सी पाठशालाएँ आत्मनिर्भर हैं, वे अनुदान नहीं लेतो।

विभिन्न प्रान्तों में जब ये पाठशालाएँ तेजी से खुलने लगीं तो उनकी व्यवस्था को संभालने के लिए एवं नवीन पाठशालाएँ खोलने के लिए प्रान्तीय वीतराग-विज्ञान पाठशाला समितियाँ—मध्यप्रदेशीय वीतराग-विज्ञान पाठशाला समिति, उत्तरप्रदेशीय वीतराग-विज्ञान पाठशाला समिति, महाराष्ट्र प्रान्तीय वीतराग-विज्ञान पाठशाला समिति बनाई गई।

प्रान्तों में भी यथासंभव जिलेवार समितियाँ गठित की गई हैं।

भारतवर्षीय समिति के अतिरिक्त मध्यप्रदेशीय समिति, महाराष्ट्र समिति, झांसी-ललितपुर जिला समिति बहुत अच्छा काम कर रही है।

इन पाठशालाओं के निरीक्षण के लिए समिति ने निरीक्षक के रूप में पं. रमेशचन्द जी को नियुक्त किया है, जो सारे भारतवर्ष में घूम-घूम कर प्रत्येक पाठशाला का निरीक्षण करते हैं और नई पाठशालाएँ खोलने की प्रेरणा देते हैं।

भारतवर्षीय वीतराग-विज्ञान पाठशाला समिति के अध्यक्ष लोकप्रिय प्रवक्ता पंडित बाबूभाई चुनीलाल मेहता व महामन्त्री श्री नेमीचन्द पाटनी एवं मंत्री डॉ० हुकमचंद भारिल्ल हैं।

श्री वीतराग सत् साहित्य प्रसारक ट्रस्ट

वीर निर्वाण संवत् २५०० में परमागम मंदिर पंच-कल्याणक प्रतिष्ठा-महोत्सव के समय पू० श्री स्वामीजी के उपदेशों से प्रभावित होकर श्री हीरालालजी मानकचंदजी काला, भावनगर वालों ने उनके व उनके परिवार की ओर से एक विशाल, धनराशि प्रदान कर 'श्री वीतराग सत् साहित्य प्रसारक ट्रस्ट' की स्थापना की तथा श्री शांति भाई जवेरी, बम्बई ने भी उसमें एक विशाल धन-राशि प्रदान कर उसे मजबूती प्रदान की।

इस ट्रस्ट के माध्यम से पूर्वाचार्यों के भव्य विशाल ग्रन्थों का प्रकाशन हिन्दी व गुजराती भाषा में किया जा

रहा है। यह अल्पकाल में ही बड़े-बड़े ग्रन्थों की ६८ हजार से भी अधिक प्रतियाँ प्रकाशित कर चुका है और भी अनेक ग्रन्थों के प्रकाशन का कार्य तेजी से चल रहा है।

श्री कुन्द कुन्द कहान दिगम्बर जैन तीर्थ सुरक्षा ट्रस्ट

भारत भूमि अनादि काल से ही अगणित तीर्थंकरों और ऋषि-मुनियों की साधना स्थली रही है, जहां उन्होंने आत्मस्वरूप के सम्यक् श्रद्धान-ज्ञान और आचरण द्वारा सिद्धपद की साधना की है, जिसके प्रमाणस्वरूप सारे भारत में १७५ से भी अधिक निर्वाणक्षेत्र, तीर्थक्षेत्र एवं अतिशय क्षेत्र विद्यमान है, जिनकी प्राकृतिक एवं अप्राकृतिक आक्रमणों से सुरक्षा करना हमारा कर्त्तव्य है।

दिगम्बर संतों ने अपने आत्मानुभव के अमूल्य क्षणों में से कुछ समय निकालकर आत्म कल्याण का मार्ग बताने वाली जीवन्त तीर्थ जिनवाणी की रचना की है, जिसे नष्ट होने से बचाना अप्रकाशित ग्रन्थों को प्रकाशित करना तथा उसके पठन-पाठन की रुचि जाग्रत करते हुये उसे जन-जन तक पहुँचाना भी नितान्त आवश्यक है।

तीर्थ क्षेत्रों के जीर्णोद्धार एवं जिनवाणी के शोध व प्रकाशन की महती आवश्यकता पूर्ति के लिये ट्रस्ट ने एक करोड़ रुपये का ध्रुव फण्ड एकत्रित करने का संकल्प लिया है, जिनकी पूर्ति हेतु ५ जुलाई १९८० तक ७६

लाख रुपयों के वचन प्राप्त हो चुके हैं तथा ३४, ३६, ७२५ रुपये नगद प्राप्त हो चुके हैं।

उक्त उद्देश्यों की प्राप्ति हेतु ट्रस्ट द्वारा निम्न गतिविधियां संचालित की जा रही है :—

१. **तीर्थ क्षेत्रों की सुरक्षा एवं जीर्णोद्धार**

विभिन्न तीर्थक्षेत्रों में ५-७-८० तक जीर्णोद्धार हेतु १,८८,३५२ रुपये की राशि दी जा चुकी है। इसके अतिरिक्त ६३,००० रु० की राशि और स्वीकृत की गई है जो शीघ्र भेजी जा रही है। इस प्रकार कुल **दो लाख छयावन हजार तीन सो बावन** रु० व्यय किये जा चुके हैं।

२. **तीर्थ सर्वेक्षण योजना—**

अप्राकृतिक आक्रमणों से तीर्थों की सुरक्षा हेतु सम्बन्धित वैधानिक दस्तावेजों का होना आवश्यक है। अतः एक तीर्थ सर्वेक्षण योजना तैयार की गई है, जिसके अन्तर्गत, क्षेत्र का प्रामाणिक इतिहास, आवश्यक दस्तावेज, चल एवं अचल सम्पत्ति का विवरण आदि जानकारी सुरक्षित रखी जायेगी। इस योजना के कार्यान्वयन हेतु आवश्यक प्रपत्र भी छपकर तैयार हो गए हैं। शीघ्र ही इस योजना को कार्यान्वित किया जाएगा।

३. कार्यकर्त्ता प्रशिक्षण योजना

तीर्थों की सुरक्षा एवं सर्वेक्षण योजना की सफलता हेतु कार्यकर्त्ताओं को प्रशिक्षित करने की योजना भी बनाई गई है जिसके अन्तर्गत उन्हें वैधानिक विशेषज्ञों के द्वारा आवश्यक जानकारी दी जायेगी।

४. जिनवाणी की शोध, प्रकाशन एवं विक्रय

अप्रकाशित ग्रंथों की शोध एवं सुरक्षा हेतु बेंगलौर एवं मद्रास में श्री जैन लिटरेचर रिसर्च इन्सटीट्यूट स्थापित किये गये हैं। सत-साहित्य प्रकाशित करने के साथ २ उसे जन साधारण तक पहुँचाने के उद्देश्य से साहित्य विक्रय-व्यवस्था में भी योगदान दिया जाता है। ५ जुलाई १९८० तक साहित्य शोध एवं प्रचार में एक लाख सात हजार नौ सौ छब्बीस रुपये व्यय किये जा चुके हैं।

श्री १००८ भगवान गोम्मटेश्वर बाहुबली सहस्त्राब्दी समारोह के अवसर पर भी पांच लाख रु० का सत्-साहित्य प्रकाशित किया जा रहा है।

५. जिनवाणी की सेवा में समर्पित आत्मार्थी विद्वान तैयार करना—

जिनागम का रहस्य स्वयं समझकर उसे आकर्षक शैली एवं सरल भाषा में जन-साधारण को समझने में समर्थ आत्मार्थी विद्वान समाज में रहें इस उद्देश्य से

सन् १९७७ से जयपुर में श्री टोडरमल दि० जैन सिद्धांत महाविद्यालय का संचालन हो रहा है। इस समय ४४ छात्र अध्ययनरत हैं। शास्त्री द्वितीय एवं अन्तिम वर्ष के छात्र प्रवचन के लिये पर्यूषण पर्व, अष्टान्हिका पर्व व शिविर आदि में जाते है।

इस वर्ष यह महाविद्यालय १२ शास्त्री विद्वानों को समर्पित करेगा और इसी प्रकार अब प्रतिवर्ष १०-१२ आत्मार्थी विद्वान समाज को उपलब्ध कराता रहेगा। महाविद्यालय के संचालन में ५ जुलाई ८० तक तीन लाख पन्द्रह हजार नौ सौ इकसठ रुपये व्यय किये जा चुके हैं।

इस प्रकार यह ट्रस्ट अपने उद्देश्यों की पूर्ति में अग्रसर हो रहा है।

अखिल भारतीय जैन युवा फैडरेशन—

पूज्य गुरुदेव श्री द्वारा जैन धर्म की तर्कसंगत एवं वैज्ञानिक व्याख्या से युवा वर्ग में भी तत्व अभ्यास की रुचि विकसित हुई। सभी तत्वाभ्यासी युवक संगठित होकर अधिक से अधिक युवकों में देव-गुरु धर्म जिनवाणी एवं जिनायतनों के प्रति आस्था उत्पन्न कर सकें—इस पुनीत उद्देश्य से १ जनवरी १९७६ को अखिल भारतीय जैन युवा फैडरेशन की स्थापना की गई है। १५ से ४० वर्ष तक के भाई-बहिन इसके सदस्य बनते हैं। अभी

तक इसको २१३ शाखाएँ हैं जिनमें कुछ ३२०० सदस्य हैं।

शिक्षण-शिविर, वीतराग विज्ञान पाठशाला, नियमित स्वाध्याय-सत्-साहित्य प्रकाशन आदि गतिविधियों के माध्यम से यह संस्था निरन्तर प्रगति पथ पर बढ़ रही है।

और भी अनेक काम पूज्य स्वामीजी की प्रेरणा से सारे भारतवर्ष में हो रहे हैं, जिनका विस्तृत विवरण देना यहाँ सम्भव नहीं है।

यह सब कार्य इतने व्यवस्थित ढंग से इतने विशाल रूप में क्यों और कैसे चल रहे हैं? इस पर जब हम विचार करते हैं तो एक बात स्पष्ट समझ में आती है कि जो भगवान् महावीर की परम्परा में अनेक आचार्य मुनिराजों एवं विद्वानों के माध्यम से अविच्छिन्न रूप में चली आ रही जिनवाणी के रहस्य का स्वामीजी के द्वारा सरल-सुबोध भाषा में गम्भीर भावों के साथ स्पष्टीकरण हो रहा है, उसने समाज के बहुभाग का मानस ही बदल दिया है। लाखों की संख्या में मुमुक्षुजनों के हृदय परिवर्तित हो गये हैं।

गुरुदेव के उपदेशों से प्रभावित होकर आत्मार्थी बने लोगों की वृत्ति संसार-देह-भोगों के प्रति बहुत कुछ अनासक्त-सी हो गई है। फलस्वरूप यश आदि के लोभ के बिना ही लाखों के दान देने वाले दानियों एवं बिना किसी कामना के कार्य करने वाले कार्यकर्त्ताओं के झुंड के झुंड

तैयार हो गये हैं, जिनके अभूतपूर्व सहयोग से उपर्युक्त महान् कार्य सम्पन्न हुए हैं, हो रहे हैं, और होंगे।

वैसे आप किसी भी तीर्थक्षेत्र पर जाइये, किसी भी मन्दिर में चले जाइए; उनमें संगमरमर के पाटियों पर दातारों के नाम की बड़ी-बड़ी सूचियाँ लगी मिलेंगी, सौ-पचास रुपये दान देने वालों के नाम भी लिखे मिल जावेंगे। पर सोनगढ़ और सोनगढ़ के सम्पर्क से निर्मित करोड़ों के जिनालयों में कहीं भी दातारों के नाम का पाटिया नहीं पायेंगे। दस-दस लाख रुपयों का दान देने वाले दानियों का भी कहीं उल्लेख नहीं मिलेगा।

यह सब गुरुदेव के उपदेशामृत का ही प्रभाव है अन्यथा नाम के भूखे इस युग में—यह कहाँ सम्भव है? सामान्य श्रावक के भेष में आजीवन ब्रह्मचर्य लेकर रहने वाले सैंकड़ों दम्पति भी इसके प्रमाण हैं। वहाँ सोनगढ़ में कोई भी व्यक्ति जमीकंद आदि अभक्ष्य पदार्थों का भक्षण करता नहीं मिलेगा और न कोई बीड़ी-सिगरेट-तम्बाकू आदि का उपयोग करता मिलेगा। रात्रि में भोजन करना तो दूर, बहुत से लोग रात्रि में पानी भी नहीं लेते। इस प्रकार उनका व उनके अनुयायियों का जीवन सदाचार से युक्त सात्त्विक जीवन हैं।

इस प्रकार पूज्य स्वामीजी के प्रभाव से जो-जो उपलब्धियाँ समाज को अब तक प्राप्त हुई हैं उनका संक्षिप्त दिग्दर्शन कराने का यह एक सामान्य प्रयास हैं। यह कहाँ तक सफल हुआ है, इसका निर्णय पाठक स्वयं करें।

जिनवाणी के शताधिक प्रवक्ता विद्वान् सैंकड़ों जिन-बिम्बों की प्रतिष्ठा, हजारों तत्वरुचिवान कार्यकर्त्ताओं का संगठन तथा लाखों की संख्या में सत्-साहित्य का प्रकाशन आदि उनके द्वारा की गई धर्म प्रभावना के बाह्य-रूप तो हैं ही, परन्तु वस्तुतः उनके निमित्त से जन-जन में आत्मकल्याण की जो तीव्र रूचि जागृत हुई है उसका मूल्यांकन नहीं किया जा सकता। न जाने कितने जीव उनकी वाणी के निमित्त से वस्तुस्वरूप समझकर अल्प-काल में ही सिद्ध पद प्राप्त करेंगे।

यद्यपि गत २८ नवम्बर को वे भौतिक रूप से हमारे बीच नहीं रहे तथापि उनके द्वारा प्रतिपादित जिनागम का मर्म एवं जन-जन में व्याप्त आत्मानुभूति की तीव्र लगन के रूप में वे चिरकाल तक अमर रहेंगे। अब तो साहित्य के रूप में उनकी वाणी ही शेष है। हम सभी उनकी वाणी के माध्यम से रत्नत्रय पथ पर चलकर परमानन्दमय सिद्ध अवस्था का पुरुषार्थ प्रारम्भ करें, यही भावना हैं।

चैतन्य चमत्कार

एक इन्टरव्यू : कानजी स्वामी से

पूज्य कानजी स्वामी से उनकी जन्म-जयन्ती के अवसर पर वैशाख शुक्ला द्वितीया, दिनांक १ मई, १९७६ को बम्बई में सायंकालीन तत्त्वचर्चा के समय सैकड़ों व्यक्तियों के बीच संपादक आत्मधर्म द्वारा लिया गया इन्टरव्यू जन-जन की जानकारी के लिए यहाँ प्रस्तुत है।

स्वामीजी के बारे में कुछ धारणाएँ आज समाज में प्रश्नों के रूप में उपस्थित हैं, जिनकी चर्चा सर्वत्र होती देखी जाती है। उन प्रश्नों के उत्तर, उन शंकाओं का समाधान, स्वयं स्वामीजी के मुख से हो, यही उद्देश्य रहा है इस इन्टरव्यू का।

"हमारे पास तो चैतन्य का चमत्कार है, जादू की लकड़ी का नहीं।" यह उत्तर पूज्य कानजी स्वामी ने उस समय दिया—जब उनसे पूछा गया कि हमने सुना

है कि आपके पास कोई जादू की लकड़ी का चमत्कार है। आप जिस पर उसे फेर देते हो, वह आपका भक्त हो जाता है, निहाल हो जाता है, सम्पन्न हो जाता है।

स्वामीजी ने अपनी बात को स्पष्ट करते हुए कहा—हमारे पास कोई जादू की लकड़ी नहीं है। हाथ में पसीना आता है—उससे शास्त्र के पृष्ठ खराब न हो जावें, इसलिए लकड़ी रखते हैं। हाथ की लकड़ी दिखाते हुए बोले—"यह लकड़ी कोई जादू की लकड़ी है—यह लोगों का कोरा भ्रम है। इसी भ्रम के कारण एक बार तो कोई लकड़ी चुरा ले गया।"

"तो आप इस भ्रम को दूर क्यों नहीं करते?" यह पूछने पर सहज भाव से स्वामीजी कहने लगे—हमने तो कई बार चर्चा में और प्रवचनों के बीच भी कहा है। इससे अधिक हम क्या कर सकते हैं?

प्रश्न—यह बात ठीक है कि आपके पास न तो कोई जादू है और न उसका कोई प्रयोग ही आप करते हैं, पर जो व्यक्ति एक बार आपके पास आता है, आपके प्रवचनों को सुनता है, वह आपका हो जाता है; इसका क्या कारण है?

उत्तर—हमारे पास आत्मा की बात है, दुःख से छूटने की बात है, सच्चा सुख प्राप्त करने की बात है। सभी प्राणी सुख चाहते हैं और दुःख से बचना चाहते हैं। अतः जो भी शान्त भाव से बिना पूर्वाग्रह के हमारी बात सुनता है वह अवश्य प्रभावित होता है। हमारे पास तो

वीतराग सर्वज्ञ प्रभु की बात है, वही करते हैं। प्रभावित होने वाले अपनी पात्रता से प्रभावित होते हैं।

प्रश्न—लोग तो ऐसा भी कहते हैं कि वे लोग सम्पन्न भी हो जाते हैं।

उत्तर—हो जाते होंगे, पर हमारे आशीर्वाद से नहीं होते। वे हमारे पास आते हैं, महीनों रहते हैं, तत्त्व की बात शांति से सुनते हैं। हो सकता है कि उन्हें पुण्य बंधता हो और सम्पन्न भी होते हों, पर उसमें हमारा किया कुछ नहीं। हम तो धन को धूल-मिट्टी कहते हैं। धन का मिल जाना कोई महत्त्व की बात तो है नहीं। महत्त्व की बात तो आत्मा का अनुभव है।

प्रश्न—आपको लोग गुरुदेव कहते हैं। क्या आप साधु हैं? गुरु तो साधु को कहते हैं।

उत्तर—साधु तो नग्न दिगम्बर छटवें-सातवें गुण-स्थान की भूमिका में झूलते भावलिंगी वीतरागी सन्त ही होते हैं। हम तो सामान्य श्रावक हैं, साधु नहीं। हम तो साधुओं के दासानुदास हैं। अहा! वीतरागी सन्त कुन्द-कुन्दाचार्य, अमृतचन्द्र आदि मुनिवरों के स्मरण मात्र से हमारा रोमांच हो जाता है।

प्रश्न—तो फिर आपको लोग गुरुदेव क्यों कहते हैं?

उत्तर—भाई! गोपालदासजी वरैया को भी तो गुरु कहते थे। देव-शास्त्र-गुरु वाले गुरु तो पंच परमेष्ठी में आचार्य, उपाध्याय, साधु ही हैं। हमसे लोग अध्यात्म सुनते हैं, सीखते हैं, सो गुरुदेव कहते हैं।

प्रश्न—तो आपको गुरुदेव विद्या-गुरु के अर्थ में कहा जाता है, देव-शास्त्र-गुरु के अर्थ में नहीं।

उत्तर—हाँ-हाँ यही बात है। भाई हम तो कई बार कहते हैं कि वस्त्रादि रखे और अपने को देव-शास्त्र-गुरु वाला गुरु माने मनवावे, वह तो अज्ञानी है। अधिक हम क्या कहें ?

प्रश्न—अभी जब साधुओं की चर्चा आई तो आपने कुन्दकुन्द का अमृतचन्द्र का नाम लिया, तो क्या आप अकेले कुन्दकुन्द और अमृतचन्द्र को ही सच्चा साधु मानते हैं, प्रामाणिक मानते हैं, और आचार्यों को नहीं ?

उत्तर—कैसी बातें करते हो ? हम तो सभी वीतरागी सन्तों को मानते हैं। सिद्धान्तचक्रवर्ती नेमीचंद्र, भूतबलि, पुष्पदन्त, समन्तभद्र, उमास्वामी, अकलंक पद्मप्रभमल-धारिदेव, जयसेनाचार्य आदि सभी मुनिराज आचार्य भगवन्त पूज्य हैं, सम्माननीय हैं।

अरे भाई ! आचार्यों को ही क्या, हम तो पण्डित बनारसीदासजी, टोडरमलजी, जयचन्दजी, दौलतरामजी आदि महान् पण्डितों के शास्त्रों को पूर्ण प्रामाणिक मानते हैं।

प्रश्न—मानते होंगे, पर आप पढ़ते तो समयसार ही हैं, अन्य ग्रंथ नहीं।

उत्तर—कौन कहता है ? हमने सभी शास्त्रों का अनेक बार स्वाध्याय किया है। दिगम्बर शास्त्रों का तो दोहन किया ही है, श्वेताम्बरों के भी लाखों श्लोक पढ़े

हैं। समयसार में ही हमारी भक्ति अधिक है। उसका कारण तो यह है कि हमें वि० सं० १९७८ में समयसार हाथ लगा और हमने जब उसका अध्ययन किया तो हमारी आँखें खुल गईं, हमें लगा कि अशरीरी होने का तो यह शास्त्र हैं। समयसार ने हमारा जीवन बदल डाला, अतः उसके प्रति हमारी विशेष भक्ति होना स्वाभाविक है। समयसार १७ बार तो हमने सभा में पढ़ा है, वैसे तो सैकड़ों बार उसका दोहन किया है। भाई अपूर्व शास्त्र है, अपूर्व। उसकी महिमा हम कहाँ तक गायें, जितनी कहें थोड़ी है।

प्रश्न—यही तो हमारा कहना है कि आपने स्वाध्याय चाहे सैकड़ों शास्त्रों का किया हो, पर सभा में समयसार ही पढ़ते हैं, अन्य ग्रंथ नहीं।

उत्तर—कौन कहता है ? हमने सभा में प्रवचनसार, नियमसार, पंचास्तिकाय, अष्टपाहुड़.....

बीच में ही टोकते हुए जब मैंने कहा कि—ये सब ग्रंथ तो आचार्य कुन्दकुन्द के ही हैं।

तब रोकते हुए बोले—सुनो तो ? सभा में धवल भी बांचा है, पहला भाग आद्योपान्त। इसके अतिरिक्त पुरुषार्थसिद्धि-उपाय, पद्मनन्दिपंचविंशतिका, मोक्षमार्ग प्रकाशक, कार्तिकेयानुप्रेक्षा, समाधिशतक, तत्त्वार्थसार, बृहद् द्रव्यसंग्रह, इष्टोपदेश, भक्तामर स्तोत्र, विषापहार स्तोत्र आदि अनेक ग्रन्थों पर प्रवचन किये हैं। अभी मई के आत्मधर्म में ३३ ग्रन्थों की तो लिस्ट दी गई है, देखना। और भी पढ़े हैं।

दिगम्बराचार्यों के सभी ग्रंथ महान् हैं। समस्त शास्त्रों का तात्पर्य एकमात्र वीतरागता है।

प्रश्न—आप पुण्य भाव को हेय कहते है–तो क्या पूजा-पाठ, दया-दान आदि पुण्य कार्य नहीं करना चाहिए ?

आपके भगत तो पूजा-पाठ करते नहीं होंगे, दान देते नहीं होंगे ?

उत्तर—कौन कहता है ? जैसी पूजा सोनगढ़ में होती है, वैसी और जगह देखी भी नहीं होगी। कई विधान-महोत्सव हो चुके, पंचकल्याण–वेदी प्रतिष्ठाएँ अनेक हुईं हैं, जिनकी सूची मई के अंक में दी गई है।

दान ! दान की क्या बात करते हो !! बिना कहे ही यहाँ वर्षा सी होती है, देखते नहीं। हम पूजा-पाठ, दया-दान थोड़े ही छुड़ाते हैं, उसे धर्म मानना छुड़ाते हैं। वह धर्म है भी नहीं।

प्रश्न—यदि धर्म नहीं तो फिर क्यों दें दान ? क्यों करें पूजा ?

उत्तर—धर्मी जीव को देव-पूजा एवं दानादि देने का भाव आता ही है, आये बिना नहीं रहता। जब-जब शुद्धोपयोग न हो तो शुभोपयोग तो रहेगा ही।

आचार्य पद्मनन्दी ने तो पद्मनन्दिपंचविंशतिका में यहाँ तक लिखा है कि—कौआ भी जब खुरचन को प्राप्त करता है तब साथी कौओं को बुलाकर खाता है, अकेला नहीं खाता। इसी प्रकार जो व्यक्ति प्राप्त धन का उप-

योग सिर्फ अपने लिए करता है, साधर्मी भाईयों और धर्म कार्यों में खर्च नहीं करता, वह तो कौए से भी गया बीता है।

जो धन प्राप्त हुआ है वह तो पूर्व पुण्य का फल है। वर्तमान कमाने के अशुभ भाव रूप पुरुषार्थ का फल नहीं है और वह पुण्य भी जब बंधा था तब तेरी शांति जली थी, अतः यह धन तो शांति का घातक है, कोई अच्छी चीज नहीं है।

प्रश्न—आप तो आत्मा की ही बात करते हैं। अपने तीर्थ हैं; उनकी यात्रा, वंदना, सुरक्षा आदि भी तो गृहस्थों के कर्त्तव्य हैं?

उत्तर—क्यों नहीं! हमने भी सारे भारत की तीन-तीन बार यात्राऐं की हैं। दो बार सारे भारत की, तीसरी बार अकेले दक्षिण भारत की। उनकी सुरक्षा भी आवश्यक है।

प्रश्न—आपकी बातें पूर्णतः सच्ची हैं और अच्छी भी हैं, फिर लोग मानते क्यों नहीं?

उत्तर—कौन कहता है, नहीं मानते? नहीं मानते तो ये हजारों लोग बम्बई जैसी मायानगरी में छब्बीस-छब्बीस दिन तक लगातार भरी दोपहरी में क्यों भागे आते हैं, समय के पहिले। हमारी बात तो लाखों लोग सुनते हैं, समझते हैं, पढ़ते हैं, मानते भी हैं। यह तो तत्त्वप्रचार का काल पका है, तुम जैसे लोग पक गए हैं।

प्रश्न—मेरा आशय यह था कि सब लोग क्यों नहीं मानते?

उत्तर—सब तो भगवान की भी नहीं मानते थे। यदि मान जाते तो संसार में ही क्यों रहते। भाई! सुनने वाले की भी तो पात्रता होती है। मानना, नहीं मानना, सुनने वाले की पात्रता पर निर्भर करता है।

जो मानते हैं वे अपने कारण और जो नहीं मानते वे भी अपने कारण। दोनों में ही हमारा क्या है?

प्रश्न—आपने कहा कि हजारों लोग सुनते हैं। आत्मा की इतनी सूक्ष्म बात बीस-बीस हजार जनता की समझ में क्या आती होगी?

उत्तर—क्यों नहीं आती होगी? सभी आत्मा हैं, भगवान् हैं। जब आठ वर्ष की बालिका को सम्यग्दर्शन हो सकता है तो·····। न सही पूरा, कुछ न कुछ तो आता ही होगा, तभी तो प्रतिदिन आते हैं। फिर हमारी भाषा तो सादी हैं, भाव अवश्य कठिन है, पर इसके समझे बिना कल्याण भी तो नहीं। हमको क्या? हमारे पास तो यही बात है और लाऐं भी कहाँ से। संसार से छूटने की बात तो यही है, इसे जाने बिना कल्याण नहीं।

प्रश्न—समाज में सर्वत्र दो दल हो गए हैं। यदि थोड़े आप झुकें और थोड़े वे तो समझौता हो सकता है।

उत्तर—भाई धर्म में समझ का काम है, समझौते का नहीं। धर्म तो वस्तु के स्वभाव को कहते हैं। वस्तु का स्वभाव तो जो है सो है, उसे समझना है, उसमें समझौते की गुंजाइश कहाँ है। हम तो किसी से लड़ते ही नहीं, फिर समझौते की बात कहाँ है। आत्मा को सही समझना ही सच्चा धर्म है।

"यह प्रश्न जो आपसे किए हैं और उनके उत्तर जो आपने दिए हैं, उन्हें जन-जन की जानकारी हेतु आत्मधर्म में दिया जाएगा।"

मेरे यह कहने पर कहने लगे—

"हम इसमें कुछ नहीं जानते, तुम्हारी बात तुम जानो। हमसे तो तुमने जो पूछा उसके बारे में जो कुछ कहना था, कह दिया। हमारे पास तो अकेले में भी यही बात है और खुली सभा में भी यही बात है।

क्या रखा है इन सब बातों में? आत्मा का अनुभव सबसे बड़ी चीज है। मनुष्य भव की सार्थकता आत्मानुभव में ही है।"

आत्मधरम निज-ज्योति जोगा शुभ मिथ्यातम हर दे उपदेश।
वीतराग-दर्शन फैलाया प्रवचन-मंदिर बना जिनेश॥
सोन-सुगढ़ सौराष्ट्र-केसरी बालब्रह्मचारी विद्वान।
समयसार के कुशल प्रवक्ता चिरजीवी हो श्रीमद् कहान॥

—सौभाग्य बौसी, अजमेर

जहाँ जहाँ गये, आपने ऐसा जादू डाला;
जड़ तक को जितने चेतन के, चिर-रंग में रंग डाला।
देख सोनगढ़ महावीरमंदिर को दर्शक कहता है;
मंदिर की दीवारों को भी 'समयसार' कर डाला॥

—शर्मनलाल 'सरस'

जन मानस की दृष्टि में :

पूज्य श्री कानजी स्वामी

मोहनींद में अचेत जीवों को भगवान् आत्मा के गीत गा-गाकर जगाने वाले, परम उपकारी, आध्यात्मिक क्रान्ति के सूत्रधार, यशस्वी सत्पुरुष श्री कानजी स्वामी के अनूठे व्यक्तित्व ने समूचे जैन समाज को सभी स्तरों पर प्रभावित किया है।

साधु, व्रती, विद्वान्, श्रीमान्, कार्यकर्त्ता, नेतागण आदि समाज के सभी प्रमुख व्यक्तित्वों ने समय-समय पर आपके प्रति मार्मिक उद्गार व्यक्त किए हैं; जिनमें आपके द्वारा हुये तत्त्व-प्रचार, दिगम्बर जैन धर्म की महती प्रभावना, धर्मायतनों का नव-निर्माण, दिगम्बर जैन साहित्य का विपुल मात्रा में सस्ता प्रकाशन आदि महान् कार्यों एवं आध्यात्मिक क्रांति की मुक्त कंठ से प्रशंसा की है।

यहाँ कतिपय मनीषियों के हार्दिक उद्गार उन्हीं के शब्दों में प्रस्तुत हैं।

चारित्रचक्रवर्ती **आचार्य श्री शान्तिसागरजी महाराज** के हृदय में श्री कानजी स्वामी के प्रति जो विचार थे, वे 'आचार्य शांतिसागर अभिनन्दन ग्रन्थ' (पृष्ठ १५७) में इस प्रकार दिये हैं:—

एक बार कुछ व्यक्ति आचार्यश्री के पास जाकर बोले–

"महाराज ! समाज में कानजी स्वामी के आत्मधर्म' ने गजब मचाया है। उनकी समयसार की एकान्तिक प्ररूपणा से बड़ी गड़बड़ी होगी, व्यवहार धर्म का व सच्चे धर्म का लोप होगा.... । इसलिए आप आदेश निकालें व उनकी प्ररूपणा धर्मबाह्य है, ऐसा जाहिर करें। उक्त कथन सुनकर आचार्यश्री ने कहा—"अगर मेरे सामने प्रवचन के लिए समयसार रखा जाएगा तो मैं भी क्या, और कोई भी क्या, वही तो मुझे कहना पड़ेगा। पुण्य-पाप को हेय ही बताना होगा, यही समयसार की विशेषता है, उनका निषेध करने से क्या होगा? कानजी का निषेध करके क्या कुन्दकुन्द का निषेध करना है ?"

मुनिराज श्री सिद्धसागरजी महाराज ने अपने विचार इस प्रकार व्यक्त किये हैं :—

"इस युग में श्री कानजी स्वामी ने आचार्य कुन्दकुन्द के आगम का अत्यधिक प्रचार व प्रसार किया है। गुजरात में जहाँ एक भी दिगम्बर जैन नहीं था वहाँ आज उनके प्रभाव से लाखों दिगम्बर जैन हो गये हैं। स्वामीजी की प्रेरणा से अनेक गगनचुम्बी दिगम्बर जैन मन्दिरों का निर्माण हुआ है तथा लाखों की संख्या में वीतरागी-सत्साहित्य का प्रकाशन किया जा चुका है। श्री कानजी स्वामी द्वारा अभूतपूर्व धर्म-प्रभावना हो रही है[1]।"

जैनेन्द्र सिद्धान्त कोश के निर्माता प्रशान्तमूर्ति तत्त्व-रसिक क्षुल्लक श्री जिनेन्द्रजी वर्णी के श्री कानजी स्वामी के प्रति उद्गार पढ़िये :—

---

१. आत्मधर्म, फरवरी १९७७, पृष्ठ ३२

"अत्यन्त परोक्ष उस तत्त्व का परिचय पाने के लिए जिनवाणी की शरण अथवा ज्ञानी जनों की संगति ही मात्र निमित्त कारण है। अत्यन्त दुर्लभ उस सार की प्राप्ति में निमित्तरूप से सहायक होने वाले उस ज्ञानी पुरुष के प्रति क्यों स्वाभाविक बहुमान स्वतः उत्पन्न न हो जायेगा ? भले ही वह ज्ञानी पुरुष-विशेष साक्षात् वीतरागी भगवान् अरहंत हों या वीतरागी दिगम्बर गुरु हों, या कोई श्रावक हों, अथवा गृहस्थ हों, तत्त्व की प्राप्ति में निमित्तपने की अपेक्षा सब समान हैं। यद्यपि वैराग्य व चारित्र की भूमिकाओं की अपेक्षा उनमें आकाश-पाताल का अन्तर है।

काठियावाड़ देशस्थ सोनगढ़ ग्राम के सुप्रसिद्ध अध्यात्म-योगी कानजी स्वामी भी उन्हीं में से एक हैं। अध्यात्म जगत् के वासी उनके अर्थात् श्री कानजी स्वामी के उस महत् उपकार को कदापि नहीं भुला सकते—जो कि उन्होंने अपनी अद्वितीय प्रतिभा द्वारा भौतिक युग की अन्धकारमय जगती पर विलुप्तप्रायः हो जाने वाली अध्यात्म-धारा को पुनः नवजीवन प्रदान किया है[1]।"

इसी क्रम में प्रत्यक्षदर्शी क्षुल्लक श्री चिदानन्दजी महाराज के अनुभव पढ़िये :

"जब मैं पैदल यात्रा करता हुआ जैनबद्री, मूडबद्री, गिरनार की यात्रा के पश्चात् चिर-अभिलषित अभिलाषा

---

१. सन्मति संदेश, वर्ष ७, अंक ५, पृष्ठ २७

को पूर्ण करने के लिए चातुर्मास के समय सोनगढ़ पहुँचा और चार मास के स्थान पर चौदह मास वहाँ रहा, वहाँ मैंने स्वामीजी की धर्मदेशना श्रवण की और वहाँ का अपूर्व शान्त वातावरण देखा तो जो आनन्द आया उसको मैं प्रगट करने में असमर्थ हूँ। यही कारण है कि जो वहाँ का वातावरण एक बार अवलोकन कर लेता है वह दूसरे वक्त जाये बिना नहीं रह सकता।.....

जब स्वामीजी से निश्चय-व्यवहार, निमित्त-उपादान, कर्त्ता-कर्म, निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्ध के विषय में सुना व चौदह माह की अवधि में जो अनुभव किया तो जीवन की दिशा ही बदल गई। वहाँ रहने वाले मुमुक्षु निश्चयात्मक धर्म पर तो अटूट श्रद्धा रखते ही हैं; क्योंकि वास्तव में धर्म तो वही है—परन्तु साथ ही जिनेन्द्र-पूजन, भक्ति दान, स्वाध्याय आदि की प्रवृत्ति भी उनमें ही देखी जाती है। और यह सब स्वामीजी के निश्चय-व्यवहार की सन्धि-पूर्वक उपदेश करने की शैली का प्रतीक हैं[1]।

क्षुल्लक श्री सुरत्नसागरजी लिखते हैं :—

स्वामीजी ने जो जैनधर्म का प्रकाश किया वह किसी ने नहीं किया। जब समाज अज्ञान-अंधकार में डूबा हुआ था, क्रियाकाण्ड में धर्म मान रहा था, प्रवचनों में क्रिया-काण्ड-कथा-कहानी ही चलते थे; स्वामीजी ने जैनतत्त्व का उद्‌घाटन किया, आत्मा के धर्म के वास्तविक स्वरूप

---

१. सन्मति संदेश, वर्ष ७, अंक ५, पृष्ठ २७

को बताया, अज्ञान-अंधकार को नष्ट किया। इन प्राणियों पर उनके महान् उपकार हैं, शब्दों में नहीं कहा जा सकता। उनका उपकार कभी भुलाया नहीं जा सकेगा।

पं० बाबूभाई चुन्नीलाल मेहता, फतेपुर, अध्यक्ष, श्री कुन्दकुन्द कहान दि० जैन तीर्थ सुरक्षा ट्रस्ट लिखते हैं :—

वे विश्व की आध्यात्मिक विभूति, बालब्रह्मचारी, आत्मार्थी सत्पुरुष, अविरत सम्यग्दृष्टि, सकल निरावरण परम पारिणामिक भावस्वरूप निज परमात्मद्रव्य के अनन्य उपासक, ज्ञायकस्वभाव की धुन के धनी, अन्तर्बाह्य व्यक्तित्व के धनी, जिनवाणी के सातिशय प्रवक्ता एवं निर्ग्रन्थ दिगम्बर मार्ग के प्रबल प्रचारक थे। मैं उन्हें कोटि-कोटि वन्दन करता हूँ।

स्वामीजी ने इस निकृष्ट पंचमकाल में हम सबको परमोत्कृष्ट निजात्मतत्त्व बताया है। उन्होंने जिनागम के अन्तस्तल में डुबकियाँ लगाकर अनेकान्त, स्याद्वाद, निश्चय-व्यवहार, निमित्त-उपादान, क्रमबद्धपर्याय, आदि अनेक रत्न निकालकर हमें दिये हैं। उनकी वाणी में द्रव्य-गुण-पर्याय की स्वतन्त्रता का सिंहनाद हुआ है। उन्होंने तत्त्व-प्रचार के सशक्त माध्यम के रूप में शिक्षण तथा प्रशिक्षण शिविर-प्रणाली का आविष्कार किया। मोक्षमार्ग का सफल नेतृत्व करने वाले इस युगपुरुष को मैं अगणित वन्दन करता हूँ।

पूज्य गुरुदेवश्री ने हमें आत्मा के अस्तित्व का भान कराया है। सम्यग्दर्शन मोक्षमार्ग की प्रथम सीढ़ी है,

उसके बिना धर्म नहीं होता, शुभाशुभभाव में धर्म नहीं है, प्रत्येक आत्मा द्रव्यस्वभाव से भगवान है, तथा स्वयं पुरुषार्थ करके पर्याय में भगवान बन सकता है—इत्यादि अनेक सिद्धान्तों का प्रतिपादन करके उन्होंने हम पर अनन्त उपकार किए हैं।

विद्वत्वर्ग में प्रतिष्ठा-प्राप्त, महान् दार्शनिक विद्वान् **स्व० पंडित श्री चैनसुखदासजी न्यायतीर्थ**, जयपुर ने गुरुदेव के सम्बन्ध में लिखा है :—

"इसमें कोई शक नहीं कि कानजी स्वामी के उदय से अनेक अंशों में क्रान्ति उत्पन्न हुई है। पुराना पोपडम खतम हो रहा है और लोगों को नई दिशा मिल रही है। यह मानना गलत है कि वे एकान्त निश्चय के पोषक हैं। हम सोनगढ़ में एवं सर्वत्र फैले हुए उनके अनुयायियों में निश्चय तथा व्यवहार का सन्तुलन देख रहे हैं। सौराष्ट्र में अनेकों नवीन मन्दिरों का निर्माण तथा उनकी प्रतिष्ठायें स्पष्ट बतलाती हैं कि वे व्यवहार का अपलाप नहीं करते। ये भगवान् कुन्दकुन्द के सच्चे अनुयायी हैं। जो उनकी आलोचना करते हैं वे आपे में नहीं हैं व उन्होंने न निश्चय को समझा है न व्यवहार को और सच तो यह है कि उन्होंने जैन शास्त्रों का हार्द ही नहीं समझा।

सोनगढ़ से जो धार्मिक साहित्य निकल रहा है उससे स्वाध्याय का बहुत प्रचार हुआ है।.....निमित्त और उपादान तथा क्रमबद्धपर्याय आदि दार्शनिक चीजें हैं, विद्वानों के समझने की हैं। ऐसी चीजों को आन्दोलन का

विषय बनाना समाज की शक्ति को क्षीण करना है। हमें प्रत्येक प्रसंग को निष्पक्ष दृष्टि से देखना चाहिए। उनका प्रयत्न प्रशंसनीय है[1]।

जैन समाज के गौरव, लब्ध-प्रतिष्ठ व्रती विद्वान् **पं० जगन्मोहनलालजी शास्त्री**, कटनी ने स्वामीजी से प्रभावित होकर उनके प्रति अपनी आस्था व्यक्त करते हुए लिखा है :—

".....जब से श्री कानजी स्वामी ने भगवान कुन्दकुन्दाचार्य के समयसार आदि अध्यात्म ग्रन्थों का परिशीलन कर जैन धर्म का यथार्थ मर्म समझा और अपने अनुयायी हजारों भाई-बहिनों को समझाया तब से दि० जैन समाज की प्रगति में एक नया मोड़ आया है[2]।

स्वामीजी ने अपने जीवन में वह कार्य किया है जो आज सहस्रों वर्षों से जैन साधकों द्वारा सम्पन्न नहीं हो सका।.....सौराष्ट्र में २० दिगम्बर जैन मन्दिरों का निर्माण, उनकी पञ्चकल्याणक प्रतिष्ठाएँ, समस्त दिगम्बर जैन तीर्थों की सहस्रों व्यक्तियों के संघ सहित वन्दना, लाखों रुपया दि० तीर्थरक्षा में चन्दा देना तथा उसकी पूर्ति का संकल्प—ये सब उनकी कट्टर दिगम्बरता के दृढ़तम प्रमाण हैं।

स्वामीजी अत्यन्त सरल, निष्कपट, सहजस्नेही, हँसमुख, ओजस्वी व्यक्ति हैं। अध्यात्म के उच्चतम विद्वान् हैं। अध्यात्म का जीवनचर्या पर प्रभाव लक्षित होता है।

---

१ सन्मति संदेश, वर्ष ७, अंक ५, पृष्ठ २

२. सन्मति संदेश, वर्ष ७, अंक ५, पृष्ठ ४६

उनके अनुयायी अधिकांश व्यक्ति रात्रि भोजन नहीं करते, कन्दमूल भक्षण नहीं करते, द्विदल नहीं खाते, व्रतरूप प्रतिज्ञाबद्ध न होते हुए इन श्रावकीय नियमों का पालन करते हैं; जबकि पुराने दिगम्बरों में यह परम्परा टूटती जा रही है।

मेरी स्वयं की दृष्टि में यह निर्णय है कि स्वामीजी का तत्त्वज्ञान यथार्थ है[1]·····।

हमने स्वामीजी को नजदीक से देखा है, परखा है और उनके प्रवचनों को तथा अनुभवों को सुना है। हमें विश्वास है कि वे दिगम्बर जिनागम के कट्टर श्रद्धानी हैं। ·····स्वामीजी प्रतिज्ञारूप प्रतिमा आदि नहीं पालते तथापि उनके आचरण खान-पान आदि किसी प्रतिमाधारी से कम नहीं हैं। उत्तम आचरण, मर्यादित खान-पान, आजीवन ब्रह्मचर्य, मन्दकषाय आदि उनके गुण उनमें और उनके अनेक शिष्यों में पाये जाते हैं[2]।"

भारतवर्षीय विद्वत्परिषद् के मन्त्री श्री पन्नालालजी साहित्याचार्य, सागर ने लिखा है—"श्री कानजी स्वामी युग पुरुष हैं, उन्होंने दिगम्बर जैन धर्म के प्रभाव का महान् कार्य किया है। उनके इस जीवन-निर्माण में समयसार का अद्भुत प्रभाव है। इसमें निबद्ध कुन्दकुन्द स्वामी की विशुद्ध अध्यात्म देशना ने अगणित प्राणियों का उपकार किया है। उसने पहले महाकवि श्री बनारसीदासजी

---

१. आगमपथ, मई १९७६, पृष्ठ ५२

२. कानजी स्वामी अभिनंदन ग्रंथ, पृष्ठ ८

को दिगम्बर धर्म में दीक्षित किया। फिर शतावधानी श्री राजचन्द्र को दि० जैन धर्म का श्रद्धालु बनाया और अब श्री कानजी स्वामी को दिगम्बर धर्म का दृढ़ श्रद्धानी बनाया है। न केवल कानजी स्वामी को, किन्तु उनके साथ २० हजार व्यक्तियों को भी इस धर्म में दीक्षित कराया है। समयसार से प्रभावित होकर श्री कानजी स्वामी ने शुद्ध वस्तुस्वरूप को समझा, वर्षों इसका एकांत में मनन किया और अन्तरंग की प्रबल प्रेरणा पाकर अपने जन्मजात धर्म का परिधान छोड़ दिया। अब वे बड़े गौरव के साथ कहते हैं :—

संसार सागर से पार करने वाला यदि कोई धर्म है तो दिगम्बर जैन धर्म ही है। उनके इस कार्य से सौराष्ट्र प्रान्त ही जागृत हुआ हो सो बात नहीं, भारतवर्ष के समस्त प्रदेश जागृत हुए हैं और स्वाध्याय के प्रति निष्ठा का भाव उत्पन्न कर आत्मकल्याण की ओर लग रहे हैं।"[1]

डॉ० दरबारीलालजी कोठिया, अध्यक्ष, अखिल भा० दिगम्बर जैन विद्वत्परिषद् ने गुरुदेव के प्रति निम्न हार्दिक भाव अभिव्यक्त किये हैं :—

"श्री कानजी स्वामी ने दिगम्बर समाज में तत्त्वज्ञान की दिशा में निश्चय ही जागरण किया है।

समयसार एक ऐसा ग्रन्थरत्न है, जिसकी ओर आत्म-गवेषी मुमुक्षु का ध्यान जाना स्वाभाविक है। स्वामीजी इस समयसार से प्रभावित होकर दिगम्बर परम्परा में

---

१. सन्मति सन्देश, वर्ष ७, अंक ५, पृष्ठ ३

आये और उन्होंने समयसार के अध्ययन, मनन व चिन्तन और सतत् स्वाध्याय पर बल दिया[1]।"

सुप्रसिद्ध सैद्धान्तिक विद्वान् पंडित **फूलचन्द्रजी सिद्धान्ताचार्य**, वाराणसी के शब्दों में :—

"कोई कुछ भी क्यों न कहे, मैं तो कहता हूँ कि वर्तमान में श्री कानजी स्वामी का उदय दिगम्बर परम्परा के लिए अभ्युदयरूप है। जिसके जीवन में दिगम्बर परम्परा का माहात्म्य समाया हुआ है वह श्री कानजी स्वामी और समग्र सौराष्ट्र को आदर की दृष्टि से देखे बिना नहीं रह सकता[2]।"

समाज के मूर्धन्य विद्वान् पंडित **कैलाशचन्द्रजी, सिद्धान्ताचार्य**, वाराणसी लिखते हैं :—

"आज से पचास वर्ष पूर्व तक शास्त्रसभा में शास्त्र बांचने के पूर्व में भगवान् कुन्दकुन्द का नाम मात्र तो लिया जाता था, किन्तु आचार्य कुन्दकुन्द के समयसार आदि अध्यात्म की चर्चा करने वाले अत्यन्त विरल थे। व्यवहार को ही यथार्थ धर्म और पुण्य को ही मोक्षमार्ग कहा जाता था।.....

आज भी दि० जैन विद्वानों में भी समयसार का अध्ययन करने वाले विरल हैं। हमने स्वयं समयसार तब पढ़ा जब श्री कानजी स्वामी के कारण ही समयसार की चर्चा का विस्तार हुआ। अन्यथा हम भी समयसारी

---

१. आगमपथ, मई १९७६, पृष्ठ २९

२. खानिया तत्त्वचर्चा, भाग १, पृष्ठ १९

कहकर ब्र० शीतलप्रसादजी की हँसी किया करते थे। यदि श्री कानजी स्वामी का उदय न होता तो दि० जैन समाज में भी कुन्दकुन्द के साहित्य का प्रचार न होता। आज जो सोनगढ़ साहित्य के नाम पर उसका बहिष्कार कर रहे हैं, उसे नष्ट-भ्रष्ट करने का प्रचार कर रहे हैं; वे प्रायः सब ऐसे ही हैं जिन्होंने कुन्दकुन्द साहित्य का अध्ययन नहीं किया और मात्र ऊपरी बातों में उलझकर उसी को मूलधर्म मान बैठे हैं। हमारा पूर्ण विश्वास है कि विरोधी पक्ष ने इन पचास वर्षों में विरोध तो किया, किन्तु समयसार का अभ्यास नहीं किया। करते तो उनके विरोध में सोनगढ़ साहित्य का बहिष्कार करने जैसी बात न होती। सोनगढ़ का साहित्य प्रकारान्तर से कुन्दकुन्द का ही साहित्य है। समयसार आदि ग्रन्थों के इतने सुन्दर और सस्ते संस्करण दि० जैन समाज कभी प्रकाशित कर ही नहीं सकता था[1]।

सोनगढ़ के विरुद्ध अखबारी आन्दोलन तो वर्षों से चलता रहा है, किन्तु सोनगढ़ ने एक नीति अपनाई और वह विरोध में न पड़कर रचनात्मक प्रवृत्ति में लगा। इधर के तीन दशकों में उसने वह काम किया है जिसे देखकर आश्चर्य होता है।

उन्होंने अपनी शैली के विद्वान् प्रवक्ता तैयार किये। कुन्दकुन्दाचार्य के ग्रन्थों का सुन्दर और सस्ता प्रकाशन किया। वीतराग-विज्ञान पाठशालाएँ खोलीं, परीक्षालय

---

१. जैन सन्देश, ४ नवम्बर १९७६, सम्पादकीय

चलाया। शिक्षण-शिविर की प्रणाली चलाई। देश में आपात स्थिति कायम होने के बाद इन्दिराजी ने जिस तत्परता से काम किया, सोनगढ़ वालों ने उससे कम तत्परता नहीं दिखलाई; किन्तु विरोधियों ने केवल अख-बारी विरोध किया। सोनगढ़ के विरोध में झूँठी-सच्ची खबरें प्रचारित कीं। न एक पाठशाला खोली, न एक शास्त्र-सभा चालू की[1]।"

श्री त्रिलोकचंदजी जैन भूतपूर्व स्वास्थ्य मंत्री, जयपुर

"गुरुदेव श्री कानजी स्वामी एक मेधावी तत्त्वज्ञानी थे। ज्ञानयोग के अनन्य साधक थे। आत्मधर्म के ऊर्जस्वी तपस्वी एवं प्रखर प्रवक्ता थे। जैनतत्त्वदर्शन के प्रभावी विद्वान् एवं व्याख्याता थे। यह उनकी अद्वितीय क्षमता थी कि उन्होंने जैनदर्शन को समझने एवं बोधगम्य शैली में प्रस्तुत करनेवाले सैकड़ों विद्वान् तैयार किए। वे तत्त्वदर्शन के प्रचार-प्रसार के आयोजन की अद्वितीय प्रतिभा के धनी थे। उन्होंने आत्मधर्म के प्रचार के लिए वीतराग-विज्ञान विद्यापीठ के रूप में, एक महान् ज्ञान-यज्ञ प्रारंभ किया, जो सतत् चलता रहेगा; जिसके माध्यम से जैनतत्त्वदर्शन का केतु लहराता रहेगा।"

ब्र० राजारामजी, भोपाल अपने हार्दिक विचार व्यक्त करते हुए लिखते हैं :—

"मैं १००८ श्री बाहुबलीजी की दक्षिण यात्रा को महामस्तकाभिषेक के समय जा रहा था। भोपाल में

---

१. जैन सन्देश, २ दिसम्बर १९७६, सम्पादकीय

श्री बाबा छोटेलालजी वर्णी का साथ हो गया। उनके साथ स्वर्णपुरी पहुँचा। वहाँ आध्यात्मिक सन्त श्रद्धेय स्वामीजी के प्रवचन सुनकर मन्त्र-मुग्ध जैसा हो गया, यात्रा का विकल्प टूट गया, करीब ४ माह लगातार वचनामृत का पान किया, जीवन में अनुपम रहस्य समझा।

भले ही लोग कहें कि व्यवहार उड़ा दिया, मुनि निन्दक हैं; परन्तु भाई! पक्षपात छोड़कर निर्णय करो। व्यवहार-कुशलता, सद्प्रवृत्ति जो सोनगढ़ में है, शायद ही अन्यत्र हो[1]।"

उनके अनन्त उपकार स्वीकृत करते हुए श्री कान्तीलाल शाह, बम्बई ने स्वामीजी के प्रति जो श्रद्धा एवं कृतज्ञताज्ञापित की, वह उन्हीं के शब्दों में पढ़िये :—

"आपने समाज का बड़ा उपकार किया है। वस्तु तत्त्व का विवेचन, यथार्थ रूप में विवेचन आप से ही मिलता है। आप स्वयं भी भेद-विज्ञान के साक्षात् अवतार हैं। एक बार जो आपका प्रवचन सुन लेता है वह आपका ही हो जाता है। हमारे तो वे धर्म-पिता हैं। उनके अनन्त उपकार का समाज व मैं अत्यन्त ऋणी हूँ। उनकी अमृत-वाणी सुनकर एवं परोक्ष में उनके प्रवचन पढ़कर अगणित जीवों ने अपना आत्मकल्याण किया है। आपने ही जैन तत्त्व को समझने की सच्ची दृष्टि दी है। जैन धर्म की आत्मा—वस्तु की स्वतन्त्रता, व्यवहार, निश्चय, निमित्त, उपादान और क्रमनियत आदि का आपने समाज के सामने

१, सन्मति सन्देश, वर्ष ७ अंक ५

इतना सुन्दर निष्कर्ष निकाल कर रखा है कि जनसाधारण की दृष्टि भी बदल गई है। उनके उपकार का बदला दे सकना असम्भव है। मेरी मंगल कामना है कि पूज्यश्री के बताये हुए जैन शासन की विश्व भर में जय-जयकार हो और गुरुदेव दीर्घकाल तक हमारा मार्ग प्रदर्शित करते रहें[1]।"

धवल शास्त्रों के सह-सम्पादक पं० हीरालालजी सिद्धान्तशास्त्री, ब्यावर श्री कानजी स्वामी के प्रति गद्गद् भाव से अपने हार्दिक उद्गार प्रगट करते हैं :—

"उनमें समुद्र-सी गंभीरता और सुमेरु-सी स्थिरता है; जो उनके बड़प्पन की द्योतक है। उनके मानस, वाणी और कार्य में एकरूपता है; जो कि उनके महात्मापने की सूचक है और उनकी प्रशान्त एवं सौम्यमुद्रा उनके आंतरिक प्रशमभाव को प्रगट करती है।

मैंने देखा कि वे जिस दृढ़ता के साथ अध्यात्म तत्त्व का प्रतिपादन करते हैं, उतनी ही सरलता के साथ समागत बन्धुओं के साथ बातचीत भी करते हैं। उनकी प्रवृत्तियों से उनके प्रशम, संवेग, आस्तिक्य, अनुकम्पा आदि भावों की छाप हृदय पर सहज में ही अंकित हो जाती है। अधिकांश जैन समाज धर्म साधन करते एवं पुण्य कार्यों को सम्पादित करते हुए भी अपनी उस चिरकालीन भूल को नहीं समझ सका था, जिसके कारण कि वह आज तक भव-वन में भटकता आ रहा है। आपने

१. सन्मति सन्देश, वर्ष ७, अंक ५, पृष्ठ ५२

लोगों की उस 'मूल में भूल' को बतला कर उन्हें सही दिशा का ज्ञान कराया है और करा रहे हैं।

जिसने कभी अध्यात्म की चर्चा नहीं सुनी ऐसे अनेक जैनेतर व्यक्ति भी आपके आध्यात्मिक प्रवचन सुन कर अध्यात्म गंगा में गोते लगाने लगते हैं। मैंने अपने जीवन में ऐसा प्रभावशाली अनोखा व्यक्तित्व अन्यत्र कहीं नहीं देखा[1]।"

पं० प्रकाशचन्दजी 'हितैषी' सम्पादक, सन्मति संदेश, नई दिल्ली लिखते हैं :—

श्रद्धेय सत्पुरुष श्री कानजी स्वामी समयसार की तत्त्वकथनी से प्रभावित होकर अपने कुलधर्म को छोड़-कर दिगम्बर धर्म में दीक्षित हुए थे। उन्हें अध्यात्म और तत्त्व से इतनी अधिक रुचि थी कि उनका जीवन ही अध्यात्म और समयसारमय हो गया था। लौकिक चर्चा व लौकिक कार्यों में उनकी रुचि रंचमात्र भी नहीं थी। निरन्तर तत्त्व का अध्ययन-मनन करना तथा देशना में भी आत्मस्पर्शी तत्त्व-प्ररूपणा की वर्षा करना उनका दैनिक कार्यक्रम था। सोनगढ़ तो अध्यात्म का नंदनवन बन गया है। प्रत्येक कल्याणार्थी मानव उनकी देशना सुनकर अभिभूत हुए बिना नहीं रहता था।

सिद्धान्तरत्न सिद्धान्तमहोदधि **पं० नन्हेलालजी जैन** न्याय-सिद्धान्तशास्त्री राजाखेड़ा (राज०) लिखते हैं :—

"श्री कानजी स्वामी ने पूज्य कुन्दकुन्द आचार्य के समयसार, प्रवचनसार आदि आध्यात्मिक ग्रन्थों का मर्म

१, सन्मति संदेश, वर्ष ७, अंक ५

जनता को पिलाकर जो कल्याण किया है वह भुलाया नहीं जा सकता। उक्त ग्रन्थों के गूढ़तत्त्वों का प्रचार और प्रसार स्वामीजी की ही देन है। पचास वर्ष पहिले इन महान ग्रन्थों के नाम से लोग ठीक-ठीक परिचित भी नहीं थे।

स्वामीजी अपनी स्पष्टवादिता के लिए प्रसिद्ध थे। वस्तुस्वरूप जैसा और जो है उसके कहने में सदा निर्भीक रहे। आपने कभी लोगों के द्वारा किये गए आक्षेपों का उत्तर देने की तरफ ध्यान नहीं दिया, स्वामीजी दूरदर्शी थे।

स्वामीजी के सम्पर्क में जो भी विद्वान आया वह पारस पत्थर से स्वर्ण के समान महाविद्वान् बन गया। यही कारण है कि श्री बाबूभाई, डॉ. भारिल्ल आदि स्वामीजी के चरण-चिह्नों पर चलकर वैसे ही बन गये।

स्वामीजी अध्यात्म-ग्रन्थों के प्रकाण्ड विद्वान् थे। प्रमाण, निश्चयनय आदि द्वारा वस्तु का विवेचन कितना गूढ़ और अकाट्य होता था जिसे हृदयंगम कर विद्वान् भी गद्गद् हो जाते थे। आज वही महान् विभूति इस नश्वर संसार से सदा के लिए लुप्त हो गयी है।"

समाज के सर्वमान्य नेता **साहू शान्तिप्रसादजी जैन** ने निम्नलिखित उद्गार व्यक्त किये हैं :—

"स्वामीजी ने वीतराग धर्म का प्रचार-प्रसार करके जैन धर्म व समाज का बहुत बड़ा उपकार किया है। वास्तव में सम्यग्दर्शन-ज्ञान व चारित्रधर्म की पुनर्स्थापना

में उनका बहुमूल्य स्थान रहा है, जिसका जैन समाज सदैव ऋणी रहेगा[1]।"

भा० दि० जैन तीर्थक्षेत्र कमेटी, बम्बई के अध्यक्ष **सेठ लालचन्द हीराचन्द** लिखते हैं :

"संत श्री कानजी स्वामी ने जैन समाज में नई जागृति और नव चैतन्य का निर्माण किया है। समाज में फैली हुई अनुचित रूढ़ियों और अन्य प्रकार विशेषतः मिथ्या तत्त्वज्ञान के बारे में आपका प्रचार बहुत ही प्रभावशील हो रहा है। स्वामीजी जो समाज को मार्गदर्शन कर रहे हैं, उसके लिये उनका अभिनन्दन है। आशा है समाज को उनका बहुत दिनों तक नेतृत्व मिलेगा[2]।"

प्रसिद्ध उद्योगपति **साहू श्रेयांसप्रसादजी जैन** लिखते हैं:-

"आज से लगभग दो हजार वर्ष पूर्व भगवान् कुन्दकुन्दाचार्यदेव ने जिस मोक्षमार्ग का उपदेश दिया व मुक्ति के मार्ग का मर्म समझाया, उस मार्ग को वर्तमान युग में स्वधर्मी भूले हुए थे व अंधकार में भटक रहे थे। अब दो हजार वर्ष बाद पूज्य स्वामीजी ने उसी मोक्षमार्ग का अनुसरण कर हमें मुक्ति का मार्ग दर्शाया है, जिसके लिये समस्त दिगम्बर जैन समाज ऐसे महान् संत का सदैव ऋणी रहेगा[3]।"

भा० दिगम्बर जैन महासभा के संरक्षक **सर सेठ भागचंदजी सोनी**, अजमेर लिखते हैं :—

---

१. आगमपथ, मई १९७६, पृष्ठ १३

२. वही पृष्ठ १३

३. वही, पृष्ठ १४

"गत त्रिदशी में स्वकुलक्रमागत परम्परा को छोड़कर वीतराग दिगम्बर धर्म में समागत श्री कानजी स्वामी की सम्यग्दर्शन-प्रधान प्रणाली वर्तमान भोगप्रधान भौतिक युग में संतप्त प्राणियों के लिए आकर्षण का केन्द्र बनी है, यह प्रशंसनीय विषय है[1]।"

सुप्रसिद्ध सेठ राजकुमारसिंहजी कासलीवाल, इन्दौर लिखते हैं :—

"सम्वत् २००१, २००२ और २००३ में मेरे पूज्य पिताजी (सर सेठ हुकमचंदजी) विद्वत्-मंडली (पंडित देवकीनन्दनजी, पं० बंशीधरजी आदि) एवं कुटुम्ब सहित सोनगढ़ गये थे और वहां के वातावरण से प्रभावित होकर उन्होंने क्रमशः प्रथम बार २५,००१) रुपया, द्वितीय बार की यात्रा में ११,००१) रु० तथा तृतीय बार ३५,०००) रु० अर्पण किये थे; वे सदैव सोनगढ़ साहित्य पढ़ते रहते थे।

यह निःसंदेह कहा जा सकता है कि सौराष्ट्र में दिगम्बर जैन मंदिर आदि के निर्माण और सहस्रों की संख्या में दिगम्बर जैन धर्मानुयायियों की वृद्धि तथा सौराष्ट्र के बाहर देश में जगह-जगह आधुनिक वातावरण में भी आध्यात्मिक ग्रन्थों के स्वाध्याय के प्रति विशेष रुचि की वृद्धि का श्रेय श्री कानजी स्वामी और उनके प्रभावशाली व्यक्तित्व को ही है[2]।"

---

१. आगमपथ, मई १९७६, पृष्ठ १४

२. वही, पृष्ठ १५

भारतवर्षीय दिगम्बर जैन महासमिति के महामंत्री **बाबू सुकुमारचंद्रजी जैन** लिखते हैं :—

"मैंने पूज्य गुरुदेव के प्रवचनों को कई बार सुना है और उनके अनेकों प्रवचनों पर मनन भी किया है। मैंने पाया कि मूल जैन धर्म तो वही है, जिसका वाचन गुरुदेव अपने प्रवचनों में करते हैं; चाहे हम उसे बाहरी क्रिया-कलापों अथवा स्थूल त्याग में ढूंढें अथवा मूढ़ आस्था में। मैं उनकी शान्त प्रकृति, अद्भुत प्रवचनशैली एवं निज-आनन्दमयी मुद्रा से अत्यन्त प्रभावित हुआ हूँ[1]।"

भारतवर्षीय दिगम्बर जैन तीर्थक्षेत्र कमेटी के महामंत्री **श्री जयन्तीलाल लल्लूभाई परिख** लिखते हैं :—

पूज्य श्री कानजी स्वामी ने दिगम्बर जैन धर्म को नवजीवन प्रदान किया और अपनी मृदु प्रेरणा से धर्म के समस्त संस्कारों को निहित करने में समाज को एक नई दिशा प्रदान की[2]।"

सोलापुर महिला विद्यापीठ की अध्यक्षा, पद्मश्री **पंडिता सुमतीबाई शाह** लिखती हैं :—

"आध्यात्मिक संत श्री कानजी स्वामी के द्वारा वीतरागता प्राप्त करने हेतु दिगम्बर जैन समाज को वर्तमान समय में जो मार्गदर्शन मिला, वह सैंकड़ों वर्षों से ओझल हो रहा था। केवल क्रियाकांड में ही वीतरागता प्राप्ति को मुख्य रूप में धर्म का मार्ग माना जाने लगा था। ऐसे

---

१. आगमपथ, मई १९७६, पृष्ठ २०

२. वही, पृष्ठ २१

समय इस संत ने अद्भुत क्रांति को जन्म दिया और समाज की आँखों से भ्रम का परदा हटाया[1]।"

सुप्रसिद्ध समाजसेवी कुसुम बहिन शाह, बम्बई लिखती हैं :—

".....पूज्य श्री कानजी स्वामी ने समयसार एवं उसके समकक्ष अन्य आगमों का प्रचार, वाचन, निर्वाचन एवं विवेचन किया। श्री कानजी स्वामी ने लोगों में मात्र स्वाध्याय की रुचि ही उत्पन्न नहीं की, बल्कि हजारों की संख्या में प्रचारकों का निर्माण किया। दिगम्बर आम्नाय सदैव उनकी ऋणी रहेगी[2]।"

इनके साथ-साथ अनेक साहित्यकारों ने भी पूज्य गुरुदेव के प्रति अपनी अनन्त-अनन्त श्रद्धा व्यक्त की है:—

श्री अक्षयकुमार जैन, सम्पादक, नवभारत टाइम्स, दिल्ली लिखते हैं :—"गुरुदेव ने वीतराग धर्म का शुद्ध स्वरूप बताकर समाज का बड़ा उपकार किया है। समाज उनका सदैव ऋणी रहेगा[3] .....।"

श्री यशपाल जैन, सम्पादक, जीवन साहित्य, दिल्ली लिखते हैं :—"संत कानजी स्वामी हमारे देश की महान् विभूतियों में से हैं। उन्होंने जैन धर्म, जैन संस्कृति और जैन दर्शन की जो सेवा की है वह सर्व विदित है[4]।"

---

१. आगमपथ, मई १९७६, पृष्ठ २२

२. वही, पृष्ठ ३२

३. वही, पृष्ठ १८

४. वही, पृष्ठ ३५

डॉ० नेमीचंद जैन, सम्पादक, तीर्थङ्कर, लिखते हैं :—
"सन्त श्री कानजी स्वामी के स्वाध्याय के क्षेत्र में बहुमूल्य प्रदेय हैं। उन्होंने लाखों-लाखों लोगों को, जो जैन दर्शन का 'क, ख, ग' भी नहीं जानते थे, पण्डित बनाया है। उन्हें सिर्फ किताबी ही नहीं वरन् जीवन मोक्षमार्गी बनाने में उनका बहुत बड़ा योग है।.....मेरे हृदय में उनके ज्ञान के प्रति अपरम्पार श्रद्धा है। एक ज्ञानमूर्ति की तरह वे अत्यन्त पूज्य हैं[1]।"

डॉ० राजकुमारजी जैन साहित्याचार्य आगरा (उ० प्र०) लिखते हैं :—

इस युग में अध्यात्म एवं जैन तत्त्वविद्या के स्पष्ट एवं दर्पणवत् विशद् तथा शृंखलाबद्ध विवेचन एवं विश्लेषण करनेवालों में असंदिग्ध रूप से श्री कानजी स्वामी का स्थान सर्वोपरि था। उन्होंने अध्यात्म की जो सरस एवं प्रभावी धारा प्रवाहित की, उससे न केवल विदद्वर्य को ही सम्यक् दृष्टि का लाभ हुआ, अपितु सहस्त्रों श्रीमन्तों का बहिरात्मत्व भी विगलित होकर अन्तरात्मत्व की भास्कर ज्योति से ज्योतिर्मय हो उठा। उनके व्यक्तित्व में निश्चय एवं व्यवहार का अनुपम सामञ्जस्य था।

डॉ सागरमलजी जैन, निदेशक पार्श्वनाथ विद्याश्रम जैन शोध-संस्थान वाराणसी (उ० प्र०) लिखते हैं :—

---

१. आगमपथ, मई १९७६ पृष्ठ ३१

निश्चय ही कानजी स्वामी आचार्य कुन्दकुन्द, आचार्य अमृतचन्द्र, कविवर बनारसीदासजी एवं पं० टोडरमलजी की परम्परा को आगे बढ़ाने वाले तथा निश्चयनयप्रधान अध्यात्म के प्रखर प्रवक्ता एवं पुरस्कर्ता थे। जैन समाज की दार्शनिक चेतना को जागृत करने में उनका योगदान महत्त्वपूर्ण रहा है। जैन धर्म में ज्ञानमार्गीय परम्परा को पुनर्जीवित करने एवं जन-जन में उसे प्रसारित करने के उनके प्रयत्न श्लाघनीय हैं।

'क्रमबद्ध पर्यायों के इस प्रवाह में जिसे और जब घटित होना है, वह होगा; साक्षी चेतना उसे घटित होता देखकर अपने आत्मानन्द को विस्मृत न करे' यही स्वामीजी के सम्पूर्ण जीवन की शिक्षाओं का सार है।

डॉ० देवेन्द्रकुमारजी जैन प्रोफेसर, इन्दौर विश्वविद्यालय इन्दौर (म० प्र०) लिखते हैं :—

"भारत में सहजसाधना का इतिहास पुराना है, परन्तु कानजी स्वामी की साधना इतनी सहज थी कि वह सब प्रकार की रूढ़ियों से मुक्त थी। रूढ़ियों और मर्यादाओं का विरोध करने के बजाय वे आत्मविवेक से प्रेरित आचरण पर जोर देते थे। वे इतने सहज थे कि उनकी सहजता विवाद का विषय बन गई, परन्तु इसे सहना करना भी उन्होंने जीवन का सहज धर्म माना।

वे जिस युग में उत्पन्न हुए, रहे और जिससे विदा हुए— वह युग भौतिक गतिविधियों, हिंसक बर्बरताओं और क्रूर उत्पीड़न का युग था, तब भी वे आत्मा की बात पर दृढ़ रहे।

शास्त्रीय जड़ताओं और भौतिक चकाचौंध से भ्रांत दुनिया को यदि उनकी सहज बात रास नहीं आई—तो इससे वे विचलित नहीं हुए। दुनियावी संकीर्णताओं से वे इतने ऊपर उठ चुके थे कि उनके बारे में यह सोचना—कि वे दिगम्बर थे या श्वेताम्बर, गृहस्थ थे या कुछ और, गलत है। वह आकाश की तरह उन्मुक्त थे, और आकाश यह कभी नहीं सोचता कि लोगों ने अपना आकाश बना लिया है, और अपने बौने आकाश को समूचे आकाश पर थोपना चाहते हैं। वे भीतर-बाहर एक थे। वे विचार और आचरण की एकमात्र कसौटी आत्मा को मानते थे।

उनके प्रवचनों को आप पढ़ें या सुनें, आप देखेंगे कि उनकी आत्मगत अनुभूतियाँ उसी तरह मन को छूती हैं जैसे सूर्य की किरणें। कभी ऐसा भी होता है कि अनुभूति विचारों के आवर्त में चक्कर काटती हुई दिखाई देती है और लगता है वह डूबी, अब डूबी, परन्तु ऐसा नहीं है, वह गहराई में जाकर अनुभव के साक्ष्यमणि लेकर आती है। उससे नया प्रकाश मिलता है। वे आचार्य कुन्दकुन्द की आध्यात्मिक विचारधारा के एक मात्र दृष्टा, साधक और व्याख्याकार थे जो इसी सदी में पैदा हुए—उन्होंने कुन्दकुन्दाचार्य की विचारधारा को अपनी साधना से नया आयाम दिया। वे नहीं हैं—फिर भी उनकी स्मृति और वाणी अमर है जो जन-मन को शान्ति देती रहेगी।"

डॉ० भागचन्द्रजी जैन 'भास्कर' अध्यक्ष, पालि-प्राकृत विभाग, नागपुर विश्वविद्यालय नागपुर (म० प्र०) लिखते हैं :—

"पूज्य कानजी स्वामी वस्तुतः आध्यात्मिक आलोक से आलोकित एक असामान्य क्रान्तिकारी संत थे, विश्व-मानव थे, आत्मनिष्ठ, चिंतनशील व आत्मानुभूति के रस से सिक्त मनीषी तत्वज्ञानी थे, परमात्मानुभूति और समता में रंगे दिव्य इन्द्रधनुषी व्यक्तित्व के धनी थे। उनका जीवन उदात्त आदर्शों का प्रतीक था, ऋजुता को संजोये था, आत्मलोचन और आत्मनिरीक्षण से मण्डित था।

समाज को कर्मकाण्ड के घिनौने रूप से मुक्त करने और गाँव-गाँव में ज्ञानदीप को प्रज्जवलित कर आत्मतत्त्व को समझने का जो अपूर्व स्वर्णावसर स्वामीजी ने दिया वह इतिहास में निश्चितरूप से स्वर्णाक्षरों में लिखा जायेगा।"

प्रो० प्रवीणचन्द्रजी जैन, राजस्थान विश्वविद्यालय जयपुर लिखते हैं :—

"जबसे श्री कानजी स्वामी के जीवन में परिवर्तन आया; उन्होंने न केवल अपने लिए बल्कि मानव समाज के लिए समयसार में मुखरित आध्यात्मिकता का द्वार निर्बन्ध रूप से खोल दिया। एक बड़ी अद्भुत धार्मिक क्रान्ति उन्होंने करदी। वे युगदृष्टा थे और क्रान्तिदर्शी भी उन्होंने भौतिकता के अभिशाप से चरमराती हुई मानवता को आशा भरे आध्यात्मिक जीवन की ओर उन्मुख कर दिया। जो भी उनके निकट सम्पर्क में आया उसका मतिभ्रम दूर हुआ, एक दिशा-बोध हुआ। लाखों व्यक्ति अपनी ओर—आत्मा की ओर देखने लगे। देश-विदेश में जैनआगम की महिमा बढ़ी।"

डॉ० ज्योतिप्रसाद जैन प्रधान सम्पादक, वीर लखनऊ (उ० प्र०) लिखते हैं—

सोनगढ़ के अध्यात्मिक सत्पुरुष श्री कानजी स्वामी की उपलब्धियाँ अनेक दृष्टियों से विलक्षण एवं चिरस्मरणीय हैं। अध्यात्म जैनपरम्परा के लिए कोई आविष्कार नहीं था—वह तो सदैव से उसकी आत्मा में ओत-प्रोत रहा है।

पूज्य कानजी स्वामी ने अध्यात्म का जो सफल, सुसंगठित एवं सुनियोजित व्यापक प्रचार-प्रसार किया, वह अप्रतिम है। जैन अध्यात्म की उनकी विचारधारा, विचार सरणि, व्याख्यानशैली, शब्दयोजना, यहाँ तक कि पारिभाषिकता भी अपने में एक अद्वितीय संस्था (इंस्टीट्यूशन) बन गई। स्वामीजी के पास बेजोड़ लगन, अध्यवसाय, आकर्षक शक्ति और प्रशंसक अनुयायियों का एकनिष्ठ सहयोग तो था ही, कुछ अद्भुत पुण्योदय भी था। चार दशकों से कुछ कम समय में ही उन्होंने समस्त संसार को झंझोड़ डाला और अनेकों जैनेतरों को भी प्रभावित किया। सोनगढ़ जैसा अद्वितीय सुनिर्मित एवं सुव्यवस्थित नगर-केन्द्र, जयपुर का पं० टोडरमल स्मारक भवन एवं सम्बन्धित संस्थाएँ, देश-विदेशों में पचासों भव्य जिनालयों का निर्माण, विपुल मात्रा एवं संख्या में पुस्तकों का प्रकाशन एवं वितरण, उत्तम प्रचारतन्त्र का निर्माण

आदि अनेक ऐसी उपलब्धियाँ हैं जो उनकी लक्ष्यनिष्ठा नेतृत्वसामर्थ्य, संगठनकौशल और सुनियोजित कार्यक्षमता के परिचायक हैं।"

डॉ० नरेन्द्रप्रकाशजी फिरोजाबाद लिखते हैं :

"जैन समाज के सर्वाधिक चर्चनीय व्यक्तियों में से एक थे स्व० श्री कानजी स्वामी। लगभग आधी शताब्दी तक उनके व्यक्तित्व की सर्वत्र धूम मची रही। वह जैनागम के अनन्य एवं उत्साही प्रेमी थे। उनकी विचारधारा से मतभेद रखते हुए भी उनके जिनवाणीप्रेम पर उंगली उठाना किसी भी तरह न्यायसंगत नहीं होगा। आज समाज में स्वाध्याय के प्रति जो अद्भुत लगाव देखने में आ रहा है, उसका श्रेय स्वामीजी को ही है। जैन साहित्य के व्यापक प्रसार एवं धार्मिक शिक्षण-शिविरों के आयोजनों की प्रेरणा मूलरूप में उन्हीं से प्राप्त हुई है।"

श्री राजेन्द्रकुमारजी जैन सम्पादक, वीर, मेरठ (उ० प्र०) लिखते हैं :—

पूज्य श्री कानजी स्वामी ने गुजरात को कर्मस्थली चुना और अनेकों लाखों जैन बन्धुओं को दिगम्बरत्व की ओर श्रद्धावनत कराया। जहाँ दिगम्बर जैन समाज का नामोनिशान नहीं था, वहाँ आज अनेकों भव्य-जिनालय एवं दिगम्बर धर्म के अनुयायी आज दिखाई पड़ते हैं यह सब स्वामीजी की देन है। दिगम्बर जैन तीर्थों की रक्षा हेतु ध्रुवफण्ड बनाए जाने की योजना उनकी अलौकिक

सूझबूझ व प्रतिभा का द्योतक है। इसके लिए आनेवाली पीढ़ी स्वामीजी को सदैव स्मरण करती रहेगी। पूज्य स्वामीजी ने सबसे बड़ा उपकार विद्वत्वर्ग पर किया है। विद्वत्वर्ग समाज में जिस प्रतिष्ठा को खो चुका था उसे स्वामीजी ने पुनः प्रतिष्ठापित किया। पं० टोडरमल स्मारक ट्रस्ट से निकले विद्वानों के रूप में स्वामीजी सदैव अमर रहेंगे तथा जो लोग उनके विरोध में लगे रहे वे भी यथासमय अपनी भूल को समझेंगे ऐसा मुझे विश्वास है।

पूज्यश्री कानजी स्वामी को मेरी विनयपूर्वक श्रद्धांजलि।

वीरवाणी के सम्पादक **पं० भंवरलालजी न्यायतीर्थ** लिखते हैं :—

"श्री कानजी स्वामी इस युग के निर्माता थे, उन्होंने एक बहुत बड़ी क्रांति समाज में की जो कि कोई साधारण आदमी नहीं कर सकता।.....वे एक निर्भीक व्यक्ति थे, सत्यधर्म को उन्होंने डंके की चोट समाज के सामने रखा।"

पं० बंशीधरजी शास्त्री एम० ए० जयपुर (राज०) लिखते हैं :—

"दिगम्बर जैन परम्परा के ज्ञात इतिहास में श्री कानजी स्वामी जैसा जैनधर्म का प्रभावक व्यक्ति ढूंढे से भी नहीं मिलता, यह बात निःसंकोच कही जा सकती है। आचार्य-प्रवर कुन्दकुन्द का नाम-स्मरण गौतम गणधर के बाद किया जाता है, उसकी महत्ता श्री स्वामीजी ने सिद्ध की

थी। उनके महान ग्रंथराज समयसार ने स्वामीजी की विचारधारा बदली। उनकी नियमित शास्त्र-स्वाध्याय-परम्परा ने लाखों व्यक्तियों के जीवन में आत्मकल्याण की भावना जागृत की थी। मात्र क्रियाकाण्ड को धर्म तो अनेक रूपों में माना जाता है, जैन समाज भी उससे अछूता नहीं था। व्रत, उपवास, दान, पूजा आदि सभी क्रियाएं तभी मोक्षमार्ग में सार्थक हैं—जब उनके मूल में आत्मज्ञान रूपी भेद-विज्ञान हो—अन्यथा वे सब क्रियाएं संसारवर्द्धक ही हैं, यह तथ्य अनेक आचार्यों, विद्वानों ने अपनी-अपनी रचनाओं में लिखा था, किन्तु उन्हें कौन पढ़ना चाहता था? अगर कोई पढ़ता भी तो उसके मर्म को कौन समझता?

इसी प्रकार सच्चे देव-शास्त्र-गुरु की चर्चा भी सर्वत्र की जाती थी, किन्तु उनके स्वरूप की ओर दृष्टि कौन देता था, उनके सर्वज्ञ-स्वरूप के फलितार्थ का कभी किसी ने विचार ही नहीं किया? सर्वज्ञता का फलितार्थ 'क्रमबद्धपर्याय' सुनिश्चित है, किन्तु सर्वज्ञता का गुणगान करने वालों की दृष्टि में यह सुनिश्चित सिद्धान्त ध्यान में ही नहीं आया था। कार्तिकेयानुप्रेक्षाकार, भैया भगवतीदासजी आदि ने इस विषय को उसीरूप में रखा था, जिसमें श्री स्वामीजी ने रखा था, किन्तु कुछ तथा-कथित शास्त्रज्ञ इस सुनिश्चित सिद्धान्त का ही विरोध करते थे।

जैन मान्यता में सृष्टि का किसी को कर्त्ता नहीं माना गया, तब किसी भी घटना का स्वयं घटित होना ही स्वयं-

सिद्ध होना है, उसमें पर की अपेक्षा क्यों हो ? भले ही उसे निमित्त संज्ञा ही क्यों न दें ?

श्री स्वामीजी ने ७० वर्षों के दीर्घकाल में पहले श्वेताम्बर एवं बाद में दिगम्बर साहित्य का गहन अध्ययन किया था उसी का परिणाम था कि उन्होंने क्रमबद्ध-पर्याय, निमित्त-उपादान, धर्म, पुण्य एवं पाप आदि विषयों पर शास्त्रसम्मत प्ररूपणा की थी, भले ही लोक को उसमें विरोध दिखे। उन्होंने आत्मतत्त्व का विवेचन किया, उसकी इस युग में ऐसी आवश्यकता है जिसे भौतिकवादी भी अनुभव करने लगा है। यही कारण है कि अनेक प्रकार के विरोधों के बावजूद भी उनका प्रभाव देश-विदेश में सर्वत्र बढ़ता गया।

इसी प्रकार स्वामीजी के सद्उपदेशों से प्रभावित होकर समाज ने तीर्थ संरक्षण के महान कार्य का बीड़ा उठाया है, जो आज श्री बाबूभाई के नेतृत्व में सतत् प्रगतिशील है।

स्वामीजी के उपदेशों, प्रवचनों, चर्चा-वार्त्ता से प्रभावित समाज में अनेकों विद्वान हुए—जिनमें श्री रामजीभाई, श्री लालचंदभाई, श्री खीमचन्दभाई, श्री बाबूभाई, श्री युगलजी तथा डॉ. हुकमचन्दजी भारिल्ल आदि विद्वान उनके कार्यों को निरन्तर बनाए रखने के लिए सतत् जागरूक एवं प्रयत्नशील हैं। स्वामीजी के तत्त्वोपदेश से जो प्रभावात्मक कार्य हुए व हो रहे हैं तथा होंगे—उनका सही महत्त्व विरोधी तो क्या उनके समर्थक भी नहीं जान

पा रहे हैं। वस्तुतः १००-२०० वर्ष बाद के इतिहासकार ही उनका निष्पक्ष महत्त्व जान सकेंगे।"

उपरोक्त महानुभावों के अतिरिक्त श्री मिस्रीलालजी गंगवाल, भूतपूर्व मुख्य मंत्री, म० भा०; श्री ढेबर भाईजी, गुजरात; श्री बाबूलालजी पाटोदी, इन्दौर; श्री नन्दलालजी सरावगी कलकत्ता, अध्यक्ष, भा० दिगम्बर जैन संघ; श्रीमती लेखवती जैन, उपाध्यक्ष, हरियाणा विधान सभा, चंडीगढ़ आदि अनेक राष्ट्र-नायकों ने तथा समाज-नायकों ने और डॉक्टर कस्तूरचंदजी कासलीवाल जयपुर, प्रो० खुशालचन्द गोरावाला बनारस, डॉ० राजेन्द्र बंसल शहडोल, प्रो० राजाराम जैन आरा आदि अनेक प्रबुद्ध व दार्शनिक विद्वानों ने पूज्य गुरुदेव के विषय में बहुत-बहुत प्रकार से श्रद्धा व्यक्त की है।

अन्त में उपसंहार के रूप में, दिगम्बर जैन विद्वानों की प्रतिनिधि संस्था श्री भारतवर्षीय दिगम्बर जैन विद्वत्परिषद् के अभिप्राय को रखना चाहूँगा। उसका तृतीय अधिवेशन सं० २००३ में सोनगढ़ में हुआ, जिसमें ३२ विद्वानों ने और दूसरे हजारों लोगों ने भाग लिया। पूज्य गुरुदेव से परिचय करने के मुख्य उद्देश्य से ही परिषद् के अधिवेशन के लिए सोनगढ़ की पसंदगी की गई थी। इस बारे में विद्वत्परिषद् के अध्यक्ष पंडित कैलाशचंद्रजी शास्त्री सिद्धान्ताचार्य ने अपने भाषण में कहा था :—

"यहाँ पर परिषद् का अधिवेशन करने से हम सब को महाराजश्री के पास से अध्यात्म का बहुत लाभ मिला

है। परिषद् अपना अधिवेशन का कार्य तो किसी भी स्थान पर कर सकती थी, किन्तु महाराजश्री के आध्यात्मिक उपदेश का लाभ लेने के मुख्य हेतु से इस स्थान को प्रमुखता दी गई है।.....महाराज के पास में हम सब को नई दृष्टि मिली है। हम भगवान् से प्रार्थना करते हैं कि हम फिर इधर आवें और महाराजश्री का उपदेश सुनकर अपना आत्मकल्याण करें[1]।"

विद्वत्परिषद् के सभी बन्धु पूज्य स्वामीजी के साक्षात् परिचय से प्रसन्न हुए थे और पूज्य गुरुदेव को अभिनन्दन देते हुए परिषद् ने एक प्रस्ताव भी पास किया था, जो निम्न प्रकार है :—

"आत्मार्थी श्री कानजी महाराज द्वारा जो दि० जैन धर्म का संरक्षण और संवर्धन हो रहा है, विद्वत्परिषद् उसका श्रद्धापूर्वक अभिनन्दन करती है तथा अपने सौराष्ट्रीय साधर्मी भाई-बहिनों के सत्धर्म प्रेम से प्रमुदित होती हुई उनका हृदय से स्वागत करती है। वह इसे परम सौभाग्य और गौरव का विषय मानती है कि आज दो हजार वर्ष बाद भी महाराज ने श्री १००८ वीर प्रभु के शासन के मूर्तिमान प्रतिनिधि भगवानश्री कुन्दकुन्द की वाणी को समझकर अपने को ही नहीं पहचाना है, अपितु हजारों और लाखों मनुष्यों के जीव-उद्धार के सत्यमार्ग पर चलने की सुविधा जुटा दी है। परिषद् का दृढ़ विश्वास है कि महाराज के प्रवचन, चिन्तन तथा मनन द्वारा होने

---

१. आगमपथ, मई १९७६, पृष्ठ ९९

वाला दिगम्बर जैन धर्म की मान्यताओं का विश्लेषण तथा विवेचन न केवल साधर्मियों की दृष्टि को अन्तर्मुख करेगा अथवा सतत् ज्ञानाराधकों को अप्रमत्तता के साक्षात् परिणाम आचरण के प्रति तथैव प्रयत्नशील बनायेगा अपितु मनुष्य मात्र को अन्तर तथा बाह्य पराधीनता से छुड़ाने वाले रत्नत्रय की प्राप्ति कराने वाले वातावरण को सहज ही उत्पन्न कर देगा।

अतएव इस अवसर पर अभिनन्दन और स्वागत के साथ-साथ परिषद् यह भी घोषित करती है कि चूंकि आपका कर्त्तव्य हमारा है, इस प्रवृत्ति में हम आपके साथ हैं[1]।"

प्रस्तावक :—प्रो० खुशालचंद जैन, एम० ए० और पं० महेन्द्रकुमारजी। समर्थक :— पंडित परमेष्ठीदासजी न्यायतीर्थ, ललितपुर एवं पंडित राजेन्द्रकुमारजी।

इस प्रकार हम देखते हैं कि पूज्य श्री कानजी स्वामी ने दिगम्बर जैन समाज के समकालीन सभी व्यक्तियों को प्रभावित किया है। वर्तमान जनमानस पर तो उनके प्रखर व्यक्तित्व की छाप है ही, भावी पीढ़ियों को भी वे युगों तक प्रभावित करते रहेंगे। ●

---

१. आगमपथ, मई १९७६, पृष्ठ १००

सम्यग्ज्ञानदीपिका

एक और इन्टरव्यू : कानजी स्वामी से*

बहुचर्चित पुस्तक 'सम्यग्ज्ञान दीपिका' को लेकर कतिपय निहित स्वार्थों द्वारा समाज में अनेक भ्रम फैलाए जा रहे हैं। उनके समुचित समाधान हेतु आत्मधर्म के सम्पादक द्वारा पूज्य श्री कानजी स्वामी से सोनगढ़ में दिनांक १६-१०-७६ को लिया गया एक इन्टरव्यू आत्म-धर्म के जिज्ञासु पाठकों की सेवा में प्रस्तुत है।

"कौन किसका विरोध करता है, अज्ञानवश सब अपना ही विरोध करते हैं।" उक्त मार्मिक शब्द पूज्य कानजी स्वामी ने तब कहे जब उनसे पूछा गया कि सम्यग्ज्ञान दीपिका को लेकर कुछ लोग आपका बहुत विरोध कर रहे हैं। बात को आगे बढ़ाते हुए उन्होंने कहा—भाई! मैं तो ज्ञानानन्द स्वभावी एक अनादि-अनन्त ध्रुव आत्मा हूँ। मुझे वे जानते ही कहाँ हैं, यदि वे मुझे वास्तविक रूप से जान लें तो विरोध ही न करेंगे।

* 'आत्मधर्म', नवम्बर, १९७६ से साभार उद्धृत

विरोध करने वाले अपनी पर्याय में अपनी आत्मा का ही विरोध कर रहे हैं। इस अमूल्य मनुष्य जीवन को आत्महित में न लगाकर बैर-विरोध में लगाना, यह तो मनुष्य जीवन की सबसे बड़ी हार है। अपन तो किसी से बैर-विरोध रखते नहीं। कोई रखो तो रखो, उसमें हम क्या कर सकते हैं?

हमारी दृष्टि में तो सभी आत्माएँ समान हैं, सभी भगवानस्वरूप हैं। पर्याय में जो अल्पकाल की भूल है, वह भी अल्पकाल में निकल जाने वाली है। और भूल भरी आत्मा तो करुणा की पात्र है, न कि विरोध की पात्र। अतः हम तो किसी से बैर-विरोध रखते नहीं।

जब उनकी आध्यात्मिक विभोरता को भंग करते हुए मैंने कहा—विरोध तो सम्यग्ज्ञानदीपिका को लेकर है, तब बोले—सम्यग्ज्ञानदीपिका को लेकर है तो हमसे क्यों कहते हैं? क्षुल्लक धर्मदासजी से कहें। वह उन्होंने बनाई है, मैंने तो कोई बनाई नहीं।

प्रश्न—आपने बनाई तो नहीं, पर छपाई तो है?

उत्तर—वह तो हमारे जन्म से ढाई माह पूर्व स्वयं क्षुल्लक धर्मदासजी ने छपाई थी। ८७ वर्ष पूर्व पं० श्रीधर शिवलालजी के ज्ञानसागर छापाखाना, बंबई में वि० सं० १९४६ माघ शुक्ला १५ मंगलवार को सर्वप्रथम छपी थी, और हमारा जन्म वि० सं० १९४७ [गुजराती १९४६] वैशाख शुक्ला दोज को हुआ था। यह पुस्तक हमें वि० सं० १९७८ में मिली थी जो आज भी हमारे

पास मौजूद है तथा सहारनपुर, भोपाल, खुरई आदि अनेक स्थानों के जिन-मन्दिरों में विद्यमान है।

जब उन्होंने तत्काल उक्त पुस्तक मुझे दिखाई, तब मैंने उसको अच्छी तरह देखा। उसके अन्त में निम्नानुसार लिखा पाया :—

"येह सम्यक्ज्ञानदीपिका नाम की पुस्तक हम बणाई है इसमें मूल हेतु मेरा येह है कि स्वयं ज्ञानमयी जीव जिस स्वभाव सैं तन्मयि है उसी स्वभाव की स्वभावना जीव सैं तन्मयि अचल होहु येही हेतु अंतःकरण मैं धारण करिकै येह पुस्तक बणाई है, ५०० (पाँच सौ) पुस्तक छापाके द्वारा प्रसिद्ध होणे की सहायता के अर्थ रुपया १०० (येक सौ) तो जिल्हा स्याहाबाद मुकाम आरा ठिकाणैं मखनलालजी की कोठी में बाबू विमलदासजी की विधवा हमारी चेली द्रौपदी ने दिया है।"

इसमें उन्होंने पुस्तक बनाने का उद्देश्य तो स्पष्ट किया ही है। साथ ही पुस्तक छपाने में सहायता करने वालों की चर्चा तक कर दी है।

जब मैंने बात को आगे बढ़ाते हुए कहा—न सही पहली बार, दूसरी बार तो आपने छपाई। तब वे बोले—दूसरी बार भी उन्होंने उसी प्रेस में उसके दो वर्ष बाद ही वि० सं० १९४८ में ५०० प्रतियाँ छपाई थीं।

प्रश्न—तीसरी बार सही!

उत्तर—तीसरी बार भी आज से ४२ वर्ष पूर्व सन् १९३४ ई० में अमरावती से हीरालाल बापूजी काले

तथा सिंघई श्री कुन्दनलालजी परवार ने छपाई थी जिसकी भूमिका ब्रह्मचारी शीतलप्रसादजी ने लिखी है।

उक्त प्रति भी तत्काल उन्होंने मेरे सामने रख दी। मैंने ब्र० शीतलप्रसादजी द्वारा लिखित भूमिका देखी। उसमें लिखा था :—

"मैंने इस पुनः मुद्रित ग्रंथ को आद्योपांत पढ़ा। यह ग्रंथ आत्मज्ञान के मनन के लिए व शुद्ध आत्मा की पृथक् पहचान के लिए बहुत उपयोगी है। इस ग्रंथ में सब वर्णन स्याद्वाद लक्षणमयी जिनवाणी के आधार से अनेकान्त स्वरूप है तथा जो अपूर्व अध्यात्म कथन श्री कुन्दकुन्दाचार्य ने श्री समयसार ग्रंथ में किया है उसी का इसमें निचोड़ है।....

.....एकान्त में मनन करने के लिए व अंतरंग में आत्मज्योति के देखने के लिए यह सम्यक्ज्ञान दीपिका दीपक के समान बार-बार प्रकाश करने योग्य है, पढ़ने व मनन करने योग्य है। इस पुस्तक में धर्मदासजी महाराज ने सैकड़ों लौकिक दृष्टान्तों को देकर आत्मा को और उसके सम्यक्ज्ञानमयी प्रकाश को तन-मन-वचन व उनकी क्रियाओं से, द्रव्यकर्म, भावकर्म व नोकर्म से व सर्व जगत के प्रपंच से व पुद्गलादि पांच द्रव्यों से भिन्न दिखाया है, बड़ा ही उपकार किया है। हर एक अध्यात्म प्रेमी जैन व अजैनों को यह ग्रंथ उपकारी है। हर एक आत्मरस पिपासु की पिपासा इस ग्रंथ घट में भरे हुए अमृत के पान से शान्त होगी।"

अमरावती — ब्र० शीतल

२६-८-१६३४

मैं पढ़ ही रहा था कि मेरा ध्यान आकर्षित करते हुए गुरुदेव बोले कि ये क्षुल्लक धर्मदासजी जयपुर के पास सवाई माधोपुर तालुका में बोली गांव के रहने वाले थे। खंडेलवाल जाति के चूड़ीवाल गदिया थे। पिता का नाम श्रीलालजी व माता का नाम ज्वालाबाई था और इनका गृहस्थ अवस्था का नाम धन्नालाल था। यह उन्होंने अपनी 'स्वात्मानुभवमनन' नामक पुस्तक की भूमिका में लिखा है।

इनकी ये पुस्तकें बहुत दिनों से पठन-पाठन की वस्तु बन रही हैं। तीन-तीन बार छप चुकी हैं और सब मन्दिरों में मौजूद हैं।

प्रश्न—होंगी, इससे क्या ? आपने चौथी बार तो छपाई ?

उत्तर—हम तो पत्र भी नहीं लिखते। छपाने-वपाने का काम हमारा नहीं।

प्रश्न—यह तो ठीक, इसमें क्या। आपने न सही, आपके स्वाध्याय मंदिर ट्रस्ट ने तो छपाई ?

उत्तर—उसने भी गुजराती में छपाई थी। हिन्दी में तो भावनगर मुमुक्षु मण्डल से सात-आठ वर्ष पहले छपी थी।

प्रश्न—किसी भी मुमुक्षु मण्डल से छपी हो, हम तो यही समझते हैं कि आपने छपाई ?

उत्तर—यह अच्छा है, ऐसा क्यों ?

प्रश्न—इसलिए, क्योंकि सभी मुमुक्षु मण्डल हैं तो आखिर आपके ही। आपकी आज्ञानुसार ही तो कार्य करते हैं ?

उत्तर—अच्छी बात कही। मुमुक्षु मण्डल हमारे कैसे ? हम तो किसी को कोई आज्ञा नहीं देते। क्या तुम यह समझते हो कि सब हम से पूछ-पूछ कर कार्य करते हैं ? अरे ! हमें कहाँ इतनी फुर्सत कि इन झंझटों में फंसें ? सारे हिन्दुस्तान के सैकड़ों मुमुक्षु मण्डलों की बात तो दूर, हम तो यहाँ रहकर भी ट्रस्ट का भी कुछ नहीं देखते। ये जानें रामजी भाई आदि।

प्रश्न—माना कि भावनगर मुमुक्षु मण्डल ने आपसे पूछकर नहीं छपाई, पर जब आपको पता चला था तब आपको मना तो करना था। यदि आप मना करते....?

उत्तर—हम इन बातों में नहीं पड़ते। फिर हमें क्यों मना करते ? यह कोई खराब पुस्तक तो है नहीं। क्षुल्लकजी ने उसमें आत्मानुभव की बात अनेक उदाहरणों द्वारा समझाई है। वे तो सीधे सज्जन आध्यात्मिक पुरुष थे, उन्होंने तो अपनी सीधी-सादी भाषा में अनुभव की महिमा बताई है। वे क्या जानते थे कि भविष्य में ऐसे लोग भी निकलेंगे कि उनके द्वारा प्रतिपादित सीधे सच्चे भावों को तोड़-मरोड़ कर इस तरह प्रस्तुत करेंगे।

प्रश्न—कुछ लोग तो कहते हैं कि उसमें व्यभिचार का पोषण है ?

उत्तर—जिन्हें परलोक का भी भय नहीं है, उन्हें कौन समझाये ? जरा विचार तो करो, जो स्वयं ब्रह्मचारी क्षुल्लक हो, क्या वे व्यभिचार का पोषण करेंगे ? उन्हें इसमें क्या लाभ था ? यह तो इन सब की बुद्धि की बलिहारी है जो इतनी अच्छी पुस्तक में से यह भाव

निकाला। और हम भी तो बाल ब्रह्मचारी हैं, ८७ वर्ष की उमर है, तथा यहाँ के आध्यात्मिक वातावरण से प्रभावित होकर ६४ सम्पन्न घरानों की पढ़ी-लिखी नई उमर की बहिनें आजीवन ब्रह्मचर्य लेकर यहाँ रहती हैं। अनेक भाइयों ने भी आजीवन ब्रह्मचर्य लिए। अधिक क्या कहें? अनेक दम्पत्ति भी यहाँ ब्रह्मचर्य लेकर रहते हैं और तत्त्व अभ्यास करते हैं।

जरा विचार तो करो जो क्षुल्लक धर्मदासजी उसी सम्यग्ज्ञान दीपिका में पृष्ठ नं० ५२ पर यह लिखा रहे हैं कि—

"जैसे कोहूऽस्त्री अपणा स्वभर्तारकूं त्यजकरिकै अन्य पुरुष की सेवा रमण आदि कर्ती है सोऽस्त्री व्यवचारणी मिथ्यात्णी है तैसे ही कोहू अपणा आपमैं आपमयि स्वसम्यक्-ज्ञानमयि देवकूं त्यज करिकै अज्ञानमयि देव की सेवा भक्ति मैं लीन है सो मिथ्याती है।"

वे व्यभिचार का पोषण कैसे कर सकते हैं?

प्रश्न—पर उसमें एक जगह तो स्पष्ट ही व्यभिचार का पोषण किया है?

उत्तर—तुमने पढ़ा है? निकालो, देखो क्या लिख है? जब मैंने सम्यग्ज्ञान दीपिका की बहुचर्चित पंक्तियाँ इस प्रकार पढ़ीं—

"जैसे जिस स्त्री का शिर के ऊपर भरतार है स्यात् सो स्त्री पर पुरुष का निमित्त सैं गर्भवी धारण करै तो ताकूं दोष लागते नाहीं।"

तब वे कहने लगे–पूरा तो पढ़ो अकेला दृष्टान्त क्यों पढ़ते हो ? साथ में घष्टान्त भी पढ़ो। तुम तो विद्वान हो, इतना भी नहीं जानते कि जो वाक्य 'जैसे' से आरम्भ होता है वह 'वैसे' बिना समाप्त नहीं होता।

क्षुल्लक धर्मदासजी ने सम्यग्ज्ञानदीपिका 'स्त्रीचरित्र' समझाने को नहीं बनाई थी। उन्होंने तो आत्मा का अनुभव कैसे हो और आत्मानुभवी की दशा कैसी होती है, बताने के लिए इसे बनाया है। स्त्री का तो मात्र दृष्टान्त दिया है, सिद्धान्त तो आगे है, उसे पढ़ो।

जब मैंने आगे इस प्रकार पढ़ा कि–

"तैसे ही किसी पुरुष का मस्तक सैं तन्मयि मस्तग के ऊपर स्वसम्यक्ज्ञानमयि परब्रह्म परमात्मा है स्यात् सो पुरुष परकर्म वसात् दोष वी धारण करै तो तापुरुषकूं दोष लागते नाहीं। बड़े का शरण लेणे का येही फल है।"

तब वे कहने लगे–देखो वे तो आत्मानुभव की महिमा बता रहे हैं। इसमें व्यभिचार का पोषण कैसे हो गया ?

प्रश्न—आपने कहा वह बात तो ठीक है, पर ऐसा खोटा दृष्टान्त भी क्यों दिया ?

उत्तर—लो, अब उन्होंने ऐसा दृष्टान्त भी क्यों दिया यह भी मैं बताऊँ। फिर दृष्टान्त में भी खोट कहाँ है ? खोट तो दोष देखने वालों की नजर में है।

प्रश्न—साफ लिखा है 'दोष लागते नाहीं'।

उत्तर—"दोष लागते नाहीं" का अर्थ है 'कोई दोष देवै नाहीं' अर्थात् दुनियां में उसे कोई दोष नहीं देता, उसकी

बदनामी नहीं होती। इसका यह अर्थ कदापि नहीं है कि वह दोषी नहीं है। पर-पुरुष से रमण करने वाली तो पापी है ही, पर उसका पाप खुलता नहीं है, बस बात इतनी सी है, क्योंकि उसका पति विद्यमान है।

तथा ध्यान से देखो उसमें 'स्यात्' शब्द पड़ा है, जिसका अर्थ कदाचित् होता है अर्थात् आशय यह है कि उसकी भावना पर-पुरुष से रमण करने की नहीं है, पर कदाचित् प्रसंगवश बलात्कार आदि के कारण गर्भ भी रह जाए तो कोई उसे दोष नहीं देता। 'बड़े की शरण लेने का यही फल है' का आशय पति की उपस्थिति से है।

प्रश्न—'दोष लागते नाहीं' का अर्थ 'दोष देवै नाहीं' आपने कैसे किया ?

उत्तर—हमने किया नहीं, ऐसा ही अर्थ है। क्षुल्लक धर्मदासजी की इसके एक वर्ष पहले उनके द्वारा ही बनाई गई पुस्तक 'स्वात्मानुभवमनन एवं भाषावाक्यावली' में भी यह दृष्टान्त दिया गया है। दृष्टान्त हूबहू है, पर उसमें 'लागते नाहीं' की जगह पर 'देवै नहीं' लिखा है। इससे प्रतीत होता है कि उनका आशय 'लागते नाहीं' से 'देवै नाहीं' का ही है।

उक्त पुस्तक भी मुझे दिखाते हुए कहा, लो देखो। मैंने देखा तो 'भाषा वाक्यावली' पृष्ठ चार पर इस प्रकार लिखा था :—

"जैसे जिस स्त्री के शिर के ऊपर भरतार है स्यात् पर पुरुष के निमित्त सें वा स्त्री गर्भबी धारण करै तोबी

उसकूं कोई दोष देवै नाहीं। तैसे ही जिसके मस्तक ऊपर अरिहंत गुरु है वो पर पदार्थ के निमित्त सें कोई दोष बी धारण करैगो तो उनकूं नाहीं लागै। बड़े का शरणा लेणे का येही फल है।"

मैं उक्त पंक्तियाँ पढ़ ही रहा था कि अत्यन्त भावुक होते हुए गुरुदेव बोले कि क्षुल्लक धर्मदासजी ने अपने ग्रंथों में बड़े ही मर्म की बातें लिखी हैं। उनकी भाषा जरूर सादी है, पर भाव गंभीर है; किन्तु ऐसा नहीं कि समझ में ही न आए। समझने की कोशिश करें तो सब समझ में आ सकता है। पर जिन्हें समझना ही नहीं, लड़ना है, उन्हें कौन समझाए?

प्रश्न—ऐसा न भी लिखते तो क्या हो जाता?

उत्तर—इसका उत्तर तो क्षुल्लकजी ही दे सकते हैं।

प्रश्न—ठीक है, तो आप इसे सम्यग्ज्ञानदीपिका में से निकलवा दीजिए?

उत्तर—यह काम हमारा नहीं है। किसी आचार्य या विद्वान् के शास्त्र में कुछ परिवर्तन करना हम उचित नहीं मानते। और किसी को अधिकार भी क्या किसी शास्त्र में से कुछ निकालने का? इस प्रकार के उदाहरण तो अनेक शास्त्रों में आते हैं। कहाँ-कहाँ से क्या-क्या निकालोगे? अरे भाई! ज्ञानियों के कथन का मर्म समझना पड़ेगा, उसमें बदला-बदली से काम नहीं चलेगा। और दृष्टान्त तो एकदेश होता है, उसे सर्वांश घटित नहीं करना चाहिए। तथा दृष्टान्त किसी सिद्धान्त को समझाने

के लिए दिया जाता है, अतः उसके द्वारा जो सिद्धान्त समझाया गया हो, उसे समझने की कोशिश करना चाहिए। दृष्टान्तों में नहीं उलझना चाहिए।

'**समयसार कलश**' के १५० वें कलश में लिखा है—"ज्ञानिन् भुंक्ष्व परापराधजनितो नास्तीह् बंधस्तव।" हे ज्ञानी! तू कर्म के उदयजनित उपभोग को भोग। तेरे पर के अपराधकर उत्पन्न हुआ ऐसा बंध नहीं है।

तो क्या समयसार में से उक्त पंक्तियाँ भी हटा दी जाएँ। भाई! उनका मर्म समझने की कोशिश करना चाहिए। पं० जयचंदजी छाबड़ा ने उक्त पंक्ति का उक्त अर्थ लिखते हुए भी भावार्थ में स्पष्ट लिखा कि—यह बात भोग की प्रेरणा देने के लिए नहीं, बल्कि परद्रव्य से अपना बुरा मानने की शंका मिटाने के लिये कही है।

इसी तरह का "ज्ञानवन्त के भोग निर्जरा हेतु हैं:" वाला कथन है। इसमें भोगों को निर्जरा का कारण बताना उद्देश्य नहीं है, बल्कि ज्ञान की महिमा बताना है।

पं० दौलतरामजी ने '**छहढाला**' में ज्ञानी की उपमा नगर-नारी [वेश्या] के प्यार से दी है। '**प्रमेयरत्नमाला**' में ज्ञान, सुख और वीर्य की एकसाथ एकत्र उपस्थिति की सिद्धि के लिए—"यूनः कान्ता समागमे" लिखा है, अर्थात् स्त्री-पुरुष के समागम का उदाहरण दिया है।

आचार्य अकलंकदेव ने '**राजवार्तिक**' में ज्ञान होते ही बंध-निरोध सिद्ध करने के लिए माँ और बेटा के समागम का उदाहरण दिया है। समयसार की '**आत्मख्याति टीका**'

में आस्रव को अशरण सिद्ध करने के लिए भोगकाल में वीर्यमोक्षण का उदाहरण दिया है। और भी सैकड़ों इस प्रकार के कथन जिनागम में उदाहरण के रूप में मिल जावेंगे।

कहाँ-कहाँ से हटाओगे, क्या-क्या हटाओगे ?

प्रश्न—लोग तो कहते हैं कि आपने शास्त्रों को बहुत कुछ बदल दिया है, फिर इसे बदलने में क्या है ?

उत्तर—लोगों के कहने की हम क्या कहें, वे तो न जाने क्या-क्या कहते है ? हमने तो कहीं भी, कुछ नहीं बदला है। अपने को ही बदला है और दिगम्बर जिनवाणी के अनुसार अपने को, अपनी मान्यता को बनाया है।

प्रश्न—पहले जो आपसे बम्बई में इन्टरव्यू लिया था और जुलाई के आत्मधर्म में दिया था, उसका लोगों पर बहुत अच्छा प्रभाव पड़ा है। कुछ लोगों ने जो समाज में आपके बारे में भ्रम फैला रखे थे, वे काफी दूर हो गए हैं। इस सम्बन्ध में मेरे पास सैंकड़ों पत्र आए हैं, कुछ तो आत्मधर्म में पाठकों के पत्रों के रूप में प्रकाशित भी किए हैं। लोगों का आग्रह है कि इस प्रकार के इन्टरव्यू यदि समय-समय पर आप देते रहें और वे विभिन्न पत्रों में प्रकाशित होते रहें तो बहुत से भ्रम साफ होते रहें।

उत्तर—भाई, हम तो इन्टरव्यू-विन्टरव्यू कुछ जानते नहीं और न हम किसी से प्रश्नोत्तर के चक्कर में ही पड़ते हैं। हम तो अपनी आत्मा की आराधना को ही सब कुछ समझते हैं। तुमने प्रेम से जिज्ञासापूर्वक पूछा था सो

उस समय जो कुछ था सो कह दिया, अभी पूछा सो अभी कह दिया।

आत्मधर्म में या और किसी अखबार में छपाना-वपाना हमारा काम नहीं। अखबारों की बात अखबार वाले जानें।

प्रश्न—आत्मधर्म तो आपका ही पत्र है। उसमें तो....

उत्तर—हमारा क्या? हाँ, हमारी कही तत्त्वचर्चा उसमें छपती है, पर क्या उसे हम देखते हैं? आप जानें, रामजी भाई जानें।

प्रश्न—यह इन्टरव्यू भी आत्मधर्म में छापना चाहते हैं?

उत्तर—कह दिया न कि हमें क्या? छापना-छपाना तुम्हारा काम है। जो तुम जानो सो करो। हमें तो जो कहना था सो कह दिया।

पंडितजी! सही बात तो यह है कि लोक-संग्रह में पड़ना ही क्यों? यह महा दुर्लभ मनुष्य भव और परम सत्य दिगम्बर धर्म प्राप्त हुआ है तो इसे यों ही विकल्प जाल में उलझे रहकर गंवा देना उचित नहीं है। इसमें समय रहते आत्मा का अनुभव प्राप्त कर लेना और उसमें ही जमे रहना कर्त्तव्य है और तो सब कुछ ठीक है—उनमें क्या रखा है?

भगवान महावीर
और
उनके अनुयायी युगपुरुष कानजी स्वामी

यह एक संयोग ही है कि इस वर्ष भगवान महावीर एवं सत्पुरुष कानजी स्वामी – दोनों का जन्मदिवस माह अप्रेल में आया है। २ अप्रेल १९७७ को महावीर जयन्ती है और २० अप्रेल १९७७ को है कानजी स्वामी का जन्मदिवस।

महावीर जयन्ती का दिन परम पावन दिन है। इस दिन भगवान् महावीर का जन्म हुआ था तथा इसी दिन कानजी स्वामी ने आज से ४३ वर्ष पूर्व स्थानकवासी सम्प्रदाय एवं उसका गौरवपूर्ण गुरुत्व, मान-प्रतिष्ठा आदि सब कुछ छोड़कर एक श्रावक के रूप में दिगम्बर धर्म स्वीकार किया था।

भगवान् महावीर पूर्ण वीतरागी-सर्वज्ञ साक्षात् परमात्मा थे। वे युगान्तरकारी अलौकिक दिव्य महापुरुष थे। उन्होंने तत्कालीन युग को प्रभावित ही नहीं किया, वरन् उस युग में एक क्रान्तिकारी परिवर्तन प्रस्तुत कर दिया। उनके युगान्तरकारी आलोक का प्रभाव आज भी विद्यमान है।

वे युग-युग तक आलोक प्रदान करने वाले दीप्तिमान दिवाकर थे। स्याद्वाद-वाणी में अनेकान्तात्मक वस्तु का जो स्वरूप उनके द्वारा प्रतिपादित हुआ, वह आज भी आत्मार्थियों का पथ आलोकित कर रहा है।

भगवान् महावीर ने प्रत्येक वस्तु की पूर्ण स्वतन्त्रता की घोषणा की और यह भी स्पष्ट किया कि प्रत्येक वस्तु स्वयं परिणमनशील है। उसके परिणमन में परपदार्थ का कोई हस्तक्षेप नहीं है। यहाँ तक कि परमपिता परमेश्वर (भगवान) भी उसकी सत्ता का कर्त्ता-हर्त्ता नहीं है। जन-जन की ही नहीं, अपितु कण-कण की स्वतन्त्र सत्ता की उद्घोषणा तीर्थंकर महावीर की वाणी में हुई।

दूसरों के परिणमन या कार्य में हस्तक्षेप करने की भावना ही मिथ्या, निष्फल और दुःख का कारण है; क्योंकि सब जीवों के जीवन-मरण, सुख-दुःख स्वयंकृत व स्वयंकृत-कर्म के फल हैं। एक को दूसरे के सुख-दुःख, जीवन-मरण का कर्त्ता मानना अज्ञान है।

भगवान् महावीर ने कर्त्तावाद का स्पष्ट निषेध किया है। कर्त्तावाद के निषेध का तात्पर्य मात्र इतना ही नहीं है कि कोई शक्तिमान ईश्वर जगत् का कर्त्ता नहीं है; अपितु यह भी है कि कोई भी द्रव्य किसी दूसरे द्रव्य का कर्त्ता-हर्त्ता नहीं है। किसी एक महान् शक्ति को समस्त जगत् का कर्त्ता-हर्त्ता मानना एक कर्त्तावाद है, तो परस्पर एक द्रव्य को दूसरे द्रव्य का कर्त्ता-हर्त्ता मानना अनेक कर्त्तावाद।

भगवान् महावीर की वाणी का प्रतिपादन केन्द्र-बिन्दु एकमात्र आत्मा है। यद्यपि उनकी वाणी में आनुसांगिक रूप से अनेक विषय आये हैं तथापि घूम-फिर कर सभी एक आत्मा पर ही केन्द्रित हो जाते हैं।

धर्म परिभाषा नहीं, प्रयोग है और जीवन है धर्म की प्रयोगशाला। भगवान् महावीर परिभाषाएँ रटकर धर्मात्मा नहीं बने थे, उन्होंने उसे जीवन में उतारा था। भेद-विज्ञान के बल से समस्त परपदार्थों से भिन्न निजात्मा को जानकर, मानकर, अनुभव कर वे उसी में जम गये थे, रम गये थे, समा गये थे।

और जब वे वीतरागी-सर्वज्ञ हो गये तो उनकी दिव्य वाणी में अनेकान्तात्मक वस्तु का सही स्वरूप स्याद्वाद शैली में सहज ही प्रस्फुटित हुआ था। उन्होंने अपनी मान्यताएं बलात् किसी पर थोपी नहीं। अपने मत के प्रचार के लिए वे किसी से लड़े-झगड़े नहीं, वाद-विवाद के अखाड़ों में नहीं उतरे। वे तो जगत् से पूर्णतः अलिप्त ही रहे। उनका आचरण पूर्णतः अहिंसक रहा। उन्होंने न किसी का बुरा किया, न किसी को भला-बुरा कहा; यहाँ तक कि उन्होंने तो किसी का भला-बुरा सोचा भी नहीं।

अहिंसात्मक आचार, अनेकान्तात्मक विचार स्याद्वाद-मयी वाणी एवं अपरिग्रही जीवन ही उनके जीवन के अभिन्न अंग रहे।

आज से २५३३ वर्ष पहिले जो पथ विपुलाचल पर भगवान् महावीर ने दिखाया था—उसी पथ के एक

पथिक हैं युगपुरुष श्री कानजी स्वामी; जिन्होंने वर्तमान जैन आध्यात्मिक जगत् को सर्वाधिक प्रभावित किया है।

युगपुरुष उसे कहते हैं जो युग को एक दिशा दे, भ्रमित युग को सन्मार्ग दिखाए; मात्र दिखाए ही नहीं, एक वैचारिक क्रान्ति उत्पन्न करके जगत् को उस पर विचार करने के लिए बाध्य कर दे। यदि वह क्रान्ति आध्यात्मिक हो और अहिंसक उपायों द्वारा सम्पन्न की गई हो तो उसका महत्त्व और भी बढ़ जाता है।

कानजी स्वामी एक ऐसे युगपुरुष हैं, जिन्होंने अपने जीवन में तो परिवर्तन किया ही; साथ ही जैन जगत् में भी आध्यात्मिक क्रान्ति उत्पन्न कर दी और बाह्य क्रिया-काण्ड में उलझे हुए समाज को भगवान् महावीर द्वारा प्रतिपादित शाश्वत शान्ति की प्राप्ति का सन्मार्ग दिखाया। उन्होंने सोते हुए समाज को मात्र जगाया ही नहीं; वरन् उसे मानव-जीवन की सफलता एवं सार्थकता पर विचार करने के लिए झकझोर कर सचेत कर दिया एवं अपनी पूर्वाग्रहग्रस्त मान्यताओं पर एक बार पुनर्विचार करने के लिए बाध्य कर दिया है।

वे इस युग के बहुचर्चित महापुरुष हैं। चाहे पक्ष में हो चाहे विपक्ष में, जैन समाज में आज जितनी चर्चा उनके बारे में चलती है; अन्य किसी के बारे में नहीं।

जैन समाज के प्रसिद्ध तटस्थ विद्वान् सिद्धान्ताचार्य पंडित कैलाशचन्द्रजी वाराणसी, २९ जुलाई १९७६ के जैन सन्देश के सम्पादकीय में लिखते हैं :-

"कोई स्वीकार करे या न करे, किन्तु यदि कभी किसी तटस्थ इतिहासज्ञ ने जैन समाज के इन तीन दशकों का इतिहास लिखा तो वह इस युग के इस काल को **'कानजी युग'** ही स्वीकार करेगा। क्योंकि वह जब इस समय के पत्रों को उठाकर देखेगा तो उसे उन पत्रों की चर्चा का प्रधान विषय कानजी ही दृष्टिगोचर होंगे। पत्रों में विरोध भी उसी का होता है जिसका कुछ विशेष अस्तित्व होता है। विरोध से ही व्यक्ति का व्यक्तित्व आंका जाता है। जो उस विरोध में भी अडिग रहता है, वही उसकी महत्ता का सूचक होता है।"

स्वामीजी सच्चे अर्थों में युगपुरुष हैं, क्योंकि उन्होंने युग को आन्दोलित किया है। वे युग से नहीं, युग उनसे प्रभावित हुआ है। इस भौतिकवादी युग में जहाँ आज का मानव भौतिक चमक-दमक में उलझ कर रह गया है, युग के प्रवाह में बह गया है, उनके प्रभाव से अछूता नहीं रह सका है; वहाँ आप पर इस अधोगामी युग का कोई प्रभाव दृष्टिगोचर नहीं होता, अपितु आपके द्वारा प्रवाहित आध्यात्मिक क्रान्ति की धारा ने लाखों लोगों का जीवन बदल दिया है। सैंकड़ों युवक-युवतियों ने ब्रह्मचर्य धारण किया है, हजारों लोगों ने गहरा तात्त्विक अभ्यास किया है एवं लाखों-लाखों लोगों ने आध्यात्मिक चर्चा में रस लेना आरम्भ कर दिया है।

बम्बई जैसी मोहमयी मायानगरी में जब आपके आध्यात्मिक प्रवचन होते हैं तो ज्येष्ठ की दोपहरी में दिन के तीन बजे की भीषण गर्मी में भी बीस-बीस हजार का

जन-समुदाय मंत्र-मुग्ध होकर लगातार महीनों सुनता है, आधा घंटा पहिले से आपकी सभा में उपस्थित रहता है।

राग से भिन्न आत्मा की गूढ़ चर्चा में इतनी विशाल जनता का इतना रुचिवंत होना अपने आप में एक आश्चर्य है, जो आपके युग-पौरुष को सहज ही सिद्ध कर देता है।

वाह्य क्रियाकांण्ड और वेष के नाम पर भोली जनता को प्रभावित कर लेना, 'धर्म खतरे में है' का नारा देकर उत्तेजित कर देना—एक बात है और गहन तात्त्विकचर्चा एवं अनुत्तेजित प्रवचन-शैली से जगत् में शान्त, आध्यात्मिक वातावरण पैदा करना—दूसरी बात। स्वामीजी ने क्रिया-काण्ड, मंत्र-तंत्र और वेश के बल पर नहीं; अजस्र ज्ञानाभ्यास के बल पर महावीर की वाणी के मर्म को उद्घाटित कर जगत् को जागृत किया है।

यद्यपि भगवान् महावीर से लेकर आज तक एक से एक बढ़कर हजारों समर्थ आचार्य, मुनिराज एवं विद्वान् हुए हैं, जिन्होंने इनसे भी अधिक महान् कार्य किये हैं; किन्तु वे विभूतियाँ आज हमारे बीच नहीं हैं। वे सब हमारे लिए भगवान् महावीरवत् ही पूज्य एवं आदरणीय हैं।

महावीर की वाणी की रहस्योद्घाटक विद्यमान विभूतियों में स्वामीजी एक युगान्तरकारी विभूति हैं; जिन्हें अपने बीच पाकर आज जैन-जगत गौरवान्वित है।

स्वामीजी नया कुछ नहीं कहते। वे तो भगवान् महावीर की वाणी में समागत एवं कुन्दकुन्दादि आचार्यों

द्वारा प्रतिपादित वाणी का मर्म ही अपनी सीधी-सादी सरल भाषा में उद्घाटित करते हैं।

स्वयं की लेखनी से कुछ भी न लिखकर सिर्फ वाणी के बल पर जगत् को इतना अधिक प्रभावित करने वाले भगवान् महावीर तो थे ही, उनके बाद भी अनेकानेक आचार्य, मुनि व विद्वद्वर्य हुए; पर वर्तमान युग में विद्यमान स्वामीजी ही एक ऐसे युग-पुरुष हैं, जिन्होंने एक अक्षर न लिखकर सिर्फ वाणी के बल पर इतनी बड़ी क्रान्ति कर दी है। यह अपने आप में एक आश्चर्य है।

आश्चर्यों के निधान युगपुरुष स्वामीजी की कार्यशैली भी अद्भुत है। यद्यपि वे प्रवचन व तत्त्वचर्चा के अतिरिक्त कुछ भी नहीं करते; तथा उनके प्रभाव से, पुण्य-प्रताप से हो रहे तत्त्वप्रचार और सहज हो रही वीतराग मार्ग की प्रभावना को देखकर आश्चर्य होता है।

देश की आजादी पाने और सुरक्षित रखने के लिए मारने वालों की फौज तो सभी तैयार करते हैं, पर महात्मा गांधी ने मरने वालों की फौज तैयार की थी और उसके ही बल पर भारत को आजाद भी कर दिखाया। ईंट का जवाब पत्थर से देने वाले वीर तो बहुत मिलेंगे, पर गांधीजी ने ऐसे वीरों की कतार खड़ी की जो गोली का जवाब गाली से भी न दें। उन्होंने गाली बकने और गोली मारने वालों के विरुद्ध गोली खाने वाले देशभक्तों के बल पर आजादी की सफल लड़ाई लड़ी थी।

जो कार्य गांधीजी ने राजनीति के क्षेत्र में अहिंसा के बल पर कर दिखाया, वही काम जैन अध्यात्म के क्षेत्र में

कानजी स्वामी ने 'उत्तर नहीं देना ही सबसे बढ़िया उत्तर है' (No Reply is Best Reply) की नीति पर चलकर कर दिखाया। जो काम हम सब दौड़-दौड़ कर नहीं कर पा रहे हैं, वह काम उन्होंने एक जगह बैठकर मात्र दो समय प्रवचन एवं एक समय तत्त्वचर्चा करके कर दिखाया। उन्होंने सदाचारी, शान्त; पर दृढ़श्रद्धानी अनुशासित तत्त्वाभ्यासियों की एक लम्बी कतार खड़ी कर दी है—जिनमें बालक, युवक, प्रौढ़ और वृद्ध पुरुष एवं महिलाएँ सभी हैं।

उनके अनुयायी तो उनके बताए मार्ग पर चलते ही हैं, पर जो लोग उनके जिन कार्यों की आलोचना करते हैं, वे भी आज वही करने लगे हैं। शिविरों की आलोचना करने वाले शिविर लगा रहे हैं, समयसार पढ़ने को मना करने वाले समयसार पढ़ रहे हैं, मंडलों का विरोध करने वाले मंडल बना रहे हैं।

विरोध करने वालों का सदा यही हाल रहा है। एक समय जो लोग शास्त्रों को छपाने का विरोध करते नहीं थकते थे, वे आज धड़ाधड़ शास्त्र छपा रहे हैं।

समस्त युग पर जिसकी छाप पड़े, वही युगपुरुष है—इस अर्थ में आप सच्चे युगपुरुष हैं।

आज के युग में एक तो कोई ८७-८८ वर्ष की उम्र तक पहुँचता ही नहीं। कदाचित् कोई पहुँच भी जाय तो वह कानों से सुनता नहीं, उसे आँखों से दिखता नहीं, वह अर्द्ध मृतकसम ही जीता है।

८७ वर्ष की उम्र में भी पूर्णतः सजग अध्ययन, मनन, चिन्तन, आत्मानुभवन, प्रवचन एवं तत्त्वचर्चा में नियमितरत युगान्तरकारी युगपुरुष आपके ८८ वें पावन जन्म-दिवस पर भगवान् महावीर की पावन स्मृतिपूर्वक मंगल कामना करता हूँ कि आप शतायु हों एवम् भगवान् महावीर द्वारा प्रतिपादित मुक्ति का मार्ग सक्रियरूप से दिखाते रहें।

जय महावीर !

यदि सुखी होना है तो ज्ञानस्वभाव का निर्णय कर

जीव ज्ञानस्वभावी है, वह सुखी होना चाहता है। वर्तमान में उसे अल्पज्ञता और दुःख है, उसे हटाकर वह सर्वज्ञता और सुख प्रकट करना चाहता है।

सर्वज्ञता अर्थात् एक समय में परिपूर्ण जाने ऐसा ज्ञान। वह सर्वज्ञता प्रकट होने की शक्ति कहाँ है? शरीर की क्रिया में, संयोग में या निमित्त में सर्वज्ञता प्रकट होने की शक्ति नहीं है। राग में भी वह शक्ति नहीं है, और वर्तमान में जो अल्पज्ञ पर्याय है उसमें से भी सर्वज्ञता प्रकट नहीं होती है।

आत्मा के ध्रुव ज्ञानस्वभाव में सर्वज्ञता प्रकट होने की शक्ति सदा भरी है। उस ज्ञानस्वभाव का विश्वास करके उसका अवलम्बन लेने पर सर्वज्ञता एवं पूर्ण आनन्द प्रकट होता है।

इसलिए जिसे आनन्द का अनुभव करना हो उसे अपने ज्ञानस्वभाव का निर्णय करना चाहिए।

—पूज्य कानजी स्वामी

पूज्य गुरुदेव श्री कानजी स्वामी

एवम्

उनका जीवन दर्शन

पूज्य गुरुदेव श्री कानजी स्वामी इस युग के एक महान् एवं असाधारण व्यक्तित्व हैं। उनके बहुमुखी व्यक्तित्व की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि उन्होंने सत्य से बहुत दूर जन्म लेकर स्वयं-बुद्ध की तरह स्वयं सत्य का अनुसंधान किया एवं अपने प्रचंड पौरुष से जीवन में उसे आत्मसात् किया। इस जीवन में शुद्ध अन्तस्तत्त्व की देशना के लिए उन्हें किन्हीं गुरु का योग नहीं मिला, फिर भी उन्होंने तत्त्व को पा लिया, क्योंकि सद्गुरु की देशना को वे इस जीवन से पूर्व ही उपलब्ध कर चुके थे। पूर्व-देशना से प्राप्त उनका तत्त्वज्ञान इतना परिपूर्ण एवं परिमार्जित था कि वह इस भवांतर तक भी उनके साथ रहा और उसी ने उन्हें आलोक दिया। उन्होंने तो आगम की नैसर्गिक पद्धति में तत्त्व को उपलब्ध कर ही लिया, किन्तु मेरी कल्पना यह है कि इस युग में अंतस्तत्त्व के बोध के लिए यदि वे किसी को अपना गुरु स्वीकार कर भी लेते तो उन्हें तत्त्व की उपलब्धि संभवित नहीं थी; क्योंकि उस समय यह तत्त्व प्रायः अभावग्रस्त था। यहाँ तक कि जीवन के सहज क्रम में जो दीक्षा-गुरु उन्हें मिले थे,

तत्त्व की शोध एवं उपलब्धि के लिए उनका मोह भी उन्हें छोड़ना पड़ा।

सौराष्ट्र के उमराला ग्राम में जन्मे उजमबा एवं मोती के ये लाल बाल्य से ही विरक्त चित्त थे और एक-मात्र ज्ञान एवं वैराग्य के प्रकरण ही उन्हें पसन्द थे। अपनी उदात्त लोकोत्तर आकांक्षाओं के समक्ष उन्हें कामिनी का माधुर्य परास्त नहीं कर सका; फलस्वरूप किसी भी मूल्य पर वे उसे जीवन में स्वीकार करने को सहमत नहीं हुए। अन्तर में भोगों से विरक्ति बढ़ती ही गई और अन्त में २४ वर्ष की भरी जवानी में वे स्थानक-वासी जैन सम्प्रदाय में दीक्षित हो गये। दीक्षा के नियमानुसार घर-बार, कुटुम्ब-परिवार, धन-सम्पत्ति सब छूट ही गये और दीक्षा के आचार का भी दृढ़ता से पालन होने लगा, किन्तु शान्ति की हूक शान्त नहीं हुई; शोध की प्रेरणा प्रशान्त नहीं हुई और अन्तर्द्वन्द्व चलता ही रहा। अतः अधिक समय तक वह प्रतिबन्ध सह्य न हो सका और एक दिन (वि० सं० १९९१) मस्त मतंग की तरह उसे भी छोड़ कर चल दिये एवं तत्त्व को मस्ती में घूमते श्री कानजी स्वामी का स्वर्णपुरी (सोनगढ़) सहज ही विश्राम-स्थल बन गया।

श्री कानजी स्वामी के जीवन का यह स्थल सर्वाधिक मार्मिक, स्तुत्य, लोक-मांगल्यकारी एवं वरेण्य है जहाँ उन्होंने जीवन के सबसे भयंकर शत्रु मताग्रह को खुली चुनौती दी और अन्त में विजयी हुए। जीवन में गृह-कुटुम्ब, कंचन-कामिनी, पद एवं प्रतिष्ठा—सभी कुछ तो छूट

जाते हैं, किन्तु महान् से महान् ऋषि, मुनि एवं मनीषियों का बौद्धिक धरातल इस मताग्रह के प्रचंड पाश से मुक्त नहीं हो पाता। फलस्वरूप दृष्टि निष्पक्ष नहीं हो पाती और असंख्य प्रयत्नों में भी सत्य आत्मसात् नहीं होता।

श्री कानजी स्वामी इस युग के एक शुद्ध आध्यात्मिक क्रान्तिदृष्टा पुरुष हैं। उन्होंने जिस क्रान्ति का सूत्रपात किया ऐसी क्रान्ति पहिले शताब्दियों में भी नहीं हुई। जैन-लोक-जीवन की श्वासें रूढ़ि, अन्ध-विश्वास, पाखंड एवं कोरे कर्मकांड की कारा में घुट रही थीं। इसके आगे धर्म कोई वस्तु ही नहीं रह गया था। इन महापुरुष ने शुद्ध जिनागम का मन्थन कर इन जीवन-विरोधी तत्त्वों को अधर्म घोषित किया और इस निकृष्ट युग में शुद्ध आत्म-धर्म की प्राण-प्रतिष्ठा की। उन्होंने जन-जीवन को एक सूत्र दिया "स्वावलम्बन अर्थात् निज शुद्ध चैतन्यसत्ता का अवलम्बन ही धर्म है। परावलम्बन में धर्म अथवा शान्ति घोषित करने वाली सभी पद्धतियाँ अधर्म हैं, फलस्वरूप विश्वसनीय नहीं हैं।"

जिस समय भारत वसुधा पर पूज्य श्री कानजी स्वामी का अवतरण हुआ उस समय भी आध्यात्मिक चिंतन का रिवाज तो था किन्तु उस चिंतन में अध्यात्म नहीं था। आध्यात्मिक चिंतन का यह स्वरूप हो चला था कि आत्मा को कहा तो शुद्ध जाता था किन्तु वास्तव में माना अशुद्ध जाता था अथवा यदि शुद्ध माना भी जाता था तो आगम भाषा के दासत्व के कारण शुद्ध निश्चयनय से शुद्ध माना जाता था और व्यवहारनय से अशुद्ध। इस तरह

श्रद्धा के लिए कोई धरती ही नहीं रह गई थी और दो नय की चक्की में घुन की तरह पिस कर आत्मा की मट्टी पलीत हो रही थी। बड़े से बड़े विचारक, महान् से महान् प्रतिभाएँ, त्याग और वैराग्य के आदर्श नय की इस चक्रीयता में इस तरह मुग्ध थे कि न तो उसमें से निकलने का उनका मन था और न सामने कोई रास्ता। सौराष्ट्र के इस संत ने जंगलों के निर्जनों में समयसार एवं मोक्षमार्ग प्रकाशक जैसे परमागमों का गम्भीर अवगाहन कर इस आध्यात्मिक समस्या का सरलतम समाधान प्रस्तुत किया।

उन्होंने कहा—"विश्व के सभी जड़-चेतन पदार्थ स्वयंसिद्ध, अनन्त शक्तिमय एवं पूर्ण हैं। वे एक दूसरे से अत्यन्त भिन्न अपनी स्वरूप-सीमा में ही रहते हैं और एक दूसरे का स्पर्श तक नहीं करते। अतः सभी जड़-चेतन सत्तायें नितान्त शुद्ध हैं। आत्मा भी एक ऐसी ही स्वयंसिद्ध, निरपेक्ष, शुद्ध चैतन्य सत्ता है। श्रद्धा, ज्ञान, चारित्र, आनन्द आदि उसकी असाधारण शक्तियाँ अथवा स्वभाव हैं जो शाश्वत उसी में रहते हैं। वह अपने में परिपूर्ण एवं अन्य से अत्यन्त भिन्न है। अतः वह एक शुद्ध एवं स्वतन्त्र सत् है क्योंकि जो सत् अथवा सत्ता है वह स्वतन्त्र, पूर्ण एवं पवित्र होना ही चाहिए अन्यथा वह सत् कैसा? जो जड़ है वह पूरा जड़ हो एवं चेतन पूरा चेतन। अपूर्ण जड़ अथवा अपूर्ण चेतन का स्वरूप भी क्या हो? अतः भिन्नत्व, पूर्णत्व एवं एकत्व सत् का स्वरूप ही है। विश्व के दर्शनों में जैन दर्शन का यह एक मौलिक अनुसंधान है। अपने अनुसंधान में उसने कहा—वस्तु का

एकत्व ही उसका परम सौन्दर्य है। सम्बन्ध की वार्ता विसंवाद है।"

विश्व के प्रत्येक पदार्थ के दो अवयव हैं—एक उसकी अनन्त शक्तिमय ध्रुव सत्ता जिसे द्रव्य कहते हैं और दूसरी उसकी प्रति समय बदलने वाली पर्याय। आत्म पदार्थ के भी इसी प्रकार दो अवयव हैं—एक उसकी श्रद्धा, ज्ञान, आनन्द आदि अनन्तशक्तिमय, ध्रुव, शुद्ध एवं पूर्ण सत्ता एवं दूसरी उसकी श्रद्धा, ज्ञान आदि पर्याय (मानने-जानने आदि रूप पर्याय)। आत्म-सत्ता का ऐसा परिशुद्ध स्वरूप स्थापित हो जाने पर आत्मा की श्रद्धा, ज्ञान (मानने-जानने वाली पर्याय) वृत्ति का केवल एक ही काम रहा कि वह आत्मा को पूर्ण एवं शुद्ध ही माने, ऐसा ही जाने एवं ऐसा ही अनुभव करे एवं अन्य सभी जड़-चेतन पदार्थों को अपने से भिन्न जाने, किन्तु आत्मा की इस वृत्ति में सदा से ही यह अज्ञान एवं अविश्वास रहा कि उसने अपने को शुद्ध एवं पूर्ण माना ही नहीं, अतएव अपनी पड़ौसी देहादि सत्ताओं में ही मुग्ध रही। उन्हीं में अहं किया एवं उन्हीं में लीनता। पर-सत्ताओं में अहं की यह वृत्ति महान् व्यभिचारिणी है, क्योंकि उसमें विश्व की अनन्त सत्ताओं को अपने अधिकार में लेकर उनमें रमण करने की चेष्टा है। अतः विश्व की स्वतन्त्र एवं सुन्दर व्यवस्था को समाप्त कर देने की यह हरकत विश्व का सर्व महान् अपराध हुआ और उसकी दण्ड-व्यवस्था में निगोद फलित हुआ।

परिशुद्ध कांचन-तत्त्व होने पर भी आत्मा की वृत्ति में इतना लम्बा एवं ऐसा भयंकर अज्ञान क्यों रहा?

इसका उत्तर आत्मा से दूर कहीं अन्यत्र तलाश करना एक दार्शनिक अपराध होगा, क्योंकि भिन्न सत्ताक वस्तुओं में कारण-कार्य भाव कभी भी घटित नहीं होता। अतः इसका उत्तर स्वयं आत्मा में ही निहित है और वह यह कि आत्मा ने सदा से स्वतः ही यह अज्ञान परिणाम किया और वह स्वयं ही अज्ञानी रहा। जैसे–एक लौकिक प्रश्न है कि महान् बलशाली, पराक्रमी एवं अतुल वैभव-सम्पन्न एक सम्राट की महारानी दरिद्री महावत पर मुग्ध क्यों हो गई ? उसका कारण यदि हम महावत को मानें तो सम्राट तो उससे कहीं बहुत अधिक है फिर महावत का मोहकैसा ? अतः पूर्ण अनुसंधान के बाद हमारा अन्तिम समाधान यही होगा कि यह तो महारानी की अपनी स्वाधीन परिणति ही है। उसके मनोविकार का कारण दूसरा कोई भी नहीं है। इसी प्रकार आत्मा का अज्ञान भी अत्यन्त पर-निरपेक्ष ही है। कथन में कर्मोदय आदि की सापेक्षता आ जाती है, किन्तु भाव तो निरपेक्ष ही रहता है; क्योंकि यदि कोई दूसरा आत्मा को अज्ञानी बनावे तो कोई ज्ञानी भी बना सकेगा और पुनः कोई अज्ञानी बना देगा। इस प्रकार आत्मा किसी के हाथ की कठपुतली मात्र रह जायगा और उसके बन्धन-मोक्ष के सभी अधिकार छिन जावेंगे और यह तो एक मखौल ही होगा। किन्तु फिर एक प्रश्न है कि तो फिर इतने लम्बे एवं जटिल अज्ञान का अन्त कैसे हो ? तो यह प्रश्न स्वयं ही अपना उत्तर है। 'अज्ञान का अन्त कैसे हो' ज्ञान में इस सबल विचार का उत्पाद ही अज्ञान का प्राणान्तक है, क्योंकि प्रबल अज्ञान में ऐसा समर्थ विचार होता ही नहीं।

अनादि अज्ञान के प्रवाह में शुद्धात्मानुभूति-सम्पन्न किन्हीं ज्ञानी सत्पुरुष का सुयोग मिलने पर जो महान् उद्यमशील आत्मा उनकी कल्याणी वाणी को हृदयंगम करता है, उसका अनादि का अज्ञान शिथिल होकर इस समर्थ विचार में प्रवृत्त होता है। ज्ञानी गुरु के सुयोग एवं उसकी वाणी मात्र से यह नहीं होता वरन् गुरु की वाणी का मर्म जिसे अपने ज्ञान में प्रतिभासित हुआ है उसे यह विशुद्ध चिंतनधारा प्रारम्भ होती है। एक प्रश्न हमारा और हो सकता है कि अज्ञानी को ज्ञान ही नहीं है, वह यह सब कैसे करता होगा ? तो ऐसा नहीं है कि उसके पास ज्ञान का अभाव है। अज्ञानी के पास ज्ञान तो बहुत है किन्तु परसत्तासक्ति के कारण उसके ज्ञान का सूक्ष्मातिसूक्ष्म व्यवसाय भी पर में ही होता है। किन्तु यही ज्ञान सद्गुरु भगवन्त से आनन्द निकेतन स्व-सत्ता की महिमा सुनकर उसके प्रति उग्र व्यवसाय करके सम्यग्ज्ञान में परिणत हो जाता है और अतीन्द्रिय आनन्द का संवेदन करने लगता है।

अज्ञानी के ज्ञान का यह ईहात्मक प्रश्न कि 'अज्ञान का अन्त कैसे हो' अज्ञान को एक खुली चुनौती है। इस प्रश्न में अज्ञानी को अज्ञान का स्वरूप विदित हो चुका है। अब वह समझने लगा है कि मेरी चैतन्य सत्ता तो अनादि-अनंत, पूर्ण, ध्रुव, अक्षयानन्द एवं सर्व सम्बन्ध विहीन है और मेरी ही वृत्ति ने उसे नश्वर, अपूर्ण, दुःखी, अज्ञानी एवं पराधीन कल्पित किया है। यही मेरा अज्ञान था और अज्ञान आत्मा की पर्याय होने पर भी झूँठा

होने से कभी भी अनुशीलन के योग्य अर्थात् श्रद्धेय नहीं है, क्योंकि अज्ञान के अनुशीलन में कभी भी सही आत्म-सत्ता की उपलब्धि नहीं हो सकती। इस प्रकार अज्ञान को वह स्व-सत्ता विरोधी एवं नितान्त मिथ्या मानकर अज्ञान एवं अज्ञान से प्रादुर्भूत पर-सत्तावलम्बी पुण्य एवं पाप की वृत्तियों एवं अनन्त पर-सत्ताओं से एकत्व तोड़ता हुआ एवं समर्थ भेद-ज्ञान के बल से स्व-सत्ता में ही एकत्व एवं अहं की स्थापना करता हुआ अपने अविराम चिन्तन द्वारा जब महामहिम, आनन्द निकेतन निज चैतन्य सत्ता में ही अलख जगाता है तो सदा से पुण्य-पाप जैसी पर-सत्ताओं में पड़ा अपनी श्रद्धा का अहं कंपित एवं विडोलित होकर स्खलन को प्राप्त होता है और लौट कर अपनी ध्रुव अक्षय सत्ता में ही अहंशील होता है। स्वरूप के अहं में धारावाहिक सक्रिय इस गौरवमय वृत्ति को ही सम्यग्दर्शन कहते हैं। श्रद्धा का स्व-सत्ता में अहं परिणत होने के ही क्षण में श्रुतज्ञान की अविराम चिंतनधारा मन का अवलम्बन तोड़ती हुई विराम को प्राप्त होकर उसी शुद्ध चैतन्य सत्ता में एकत्व करती हुई अतीन्द्रिय आनन्द की अनुभूति करती है। उपयोग की यह परिणति ही सम्यग्ज्ञान है जो अनुभूति का विलय हो जाने के उपरान्त भी भेद-विज्ञान की प्रचंड क्षमता को लेकर सम्यग्दर्शन के साथ निरन्तर बना रहता है और उसी समय किंचित् रागांशों के अभाव से उत्पन्न अल्प-स्वरूप स्थिरता ही स्वरूपाचरण चारित्र है। इस प्रकार परम आनन्दस्वरूप यह अनुभूति श्रद्धा, ज्ञान, चारित्र की त्रिवेणी है और साक्षात् मोक्षमार्ग है।

जैन दर्शन का यह चिंतन सचमुच कितना वैज्ञानिक है—जहाँ वह यह प्रतिपादन करता है कि जीवन-कला का आरम्भ ही जीवन-तत्त्व (निज अक्षय सत्ता) के स्वीकार से होता है; इसीलिए साधना के प्रथम चरण में उसने सम्यग्दर्शन को स्थापित किया और कहा कि इसके बिना सर्वबोध एवं जीवन की सर्व आचार-संहिता मिथ्या ही होती है।

सम्यग्दर्शन जैसी जीवन की महान् उपलब्धि एवं उसके विषय को हृद्यंगम करने के लिए यदि हम आत्म-पदार्थ के द्रव्य-पर्याय स्वरूप पर अनेकान्तिक दृष्टि से विचार करें तो निर्णय बड़ा सरल हो जावेगा। यह निर्विवाद है कि आत्म-पदार्थ के दो अंश हैं—द्रव्य एवं पर्याय। आत्म-पदार्थ का द्रव्य अंश जिसे शुद्ध चैतन्य सत्ता, कारण परमात्मा, परम पारणामिक भाव भी कहते हैं; सदा पर से भिन्न, अक्षय, अनन्तशक्तिमय, पूर्ण, ध्रुव, अत्यन्त शुद्ध एवं पूर्ण निरपेक्ष है। उसमें कुछ भी करने का कभी भी अवकाश नहीं है और वह सदा ज्यों का त्यों रहता है। आत्मा के द्रव्यांश का यह स्वरूप प्रसिद्ध हो जाने पर अब उसका दूसरा अंश पर्याय शेष रह जाती है। यदि हम पर्याय की कार्य-मर्यादा पर विचार करें तो हमारे मन में स्वाभाविक ही एक प्रश्न पैदा होगा कि द्रव्य के पूर्ण एवं शुद्ध सिद्ध हो जाने पर पर्याय को तो द्रव्य में कुछ करना ही नहीं रहा, तब फिर पर्याय का कार्य क्या होगा ? तो उसका एक यह सरल उत्तर है कि जब आत्मा का स्वभाव ही श्रद्धा, ज्ञान, चारित्र, आनन्द

आदि है तो उसकी पर्याय का कार्य भी नित्य विद्यमान द्रव्य की श्रद्धा, उसी का अहं, उसी की अनुभूति, एवं उसी की लीनता करना रहा और पर्याय का स्वरूप भी आलम्बनशीलता ही है। वह द्रव्य की रचना नहीं करती, द्रव्य में कोई अतिशय नहीं लाती, वरन् द्रव्य जैसा है वैसी ही उसकी प्रतीति एवं अनुभूति करती है। द्रव्य तो ज्ञान एवं अज्ञान दोनों दशाओं में ज्यों का त्यों रहता है। इस प्रकार अनेकांतिक पद्धति में आत्म-पदार्थ के दो अंश द्रव्य एवं पर्याय की स्वरूप-सीमा भी स्थिर हो जाती है और आत्म-पदार्थ दो अंशों में खण्डित न होकर द्रव्य-पर्याय-स्वरूप पूरा बना रहता है।

आत्मा द्रव्य-पर्यायस्वरूप होने पर भी द्रव्य और पर्याय का स्वरूप परस्पर विरुद्ध होने के कारण श्रद्धा का अहं एक ही साथ दोनों में नहीं हो सकता। जैसे एक स्त्री का अहं एक ही साथ स्व एवं पर दो पुरुषों में नहीं हो सकता। नित्य द्रव्य के अहं में 'मैं अक्षय हूँ' ऐसी अनुभूति होती है और अनित्य पर्याय के अहं में 'मैं क्षणिक हूँ' ऐसा संवेदन होता है। पर्याय का स्वरूप भी विविध-रूपा है। वह क्षणिक है, आलम्बनवती है, वर्तमान में विकारी है। भूत एवं भविष्य का वृत्ति-समुदाय वर्तमान में विद्यमान ही नहीं है एवं समग्र ही वृत्ति-समुदाय गमनशील है। उसमें विश्राम नहीं है। पथिक को गमन में नहीं, गन्तव्य में विश्राम मिलता है; क्योंकि गन्तव्य ध्रुव एवं विश्रामस्वरूप होता है। इसी प्रकार आत्म-वृत्ति को वृत्ति में नहीं, ध्रुव में ही विश्राम मिलता है।

वृत्तियाँ तो स्वयं ही विश्राम के लिए किसी सत्ता को तपासती हैं। इस प्रकार समग्र ही वृत्ति-समुदाय दृष्टि (श्रद्धा) के विषय क्षेत्र से बाहर रह जाता है। इसी अर्थ में आचार्यदेव श्री अमृतचन्द्र ने कहा है कि "बद्धस्पृष्टादि भाव आत्मा के ऊपर ही ऊपर तैरते हैं, उनका आत्मा में प्रवेश नहीं होता।"

इस सम्बन्ध में कुछ और भी तथ्य विचारणीय हैं। आत्मा एक अनादि अनन्त ध्रुव एवं अक्षय सत्ता है। गुण एवं पर्याय तो उसके लघु अंश हैं और वह एक ही सदा इनको पीकर बैठा है। अतः गुण पर्याय के अनन्त सत्त्वों से भी वह एक चिन्मय सत्ता बहुत अधिक है। पर्याय जब उस अनन्तात्मक एक का अहं एवं अनुभव करती है तो उस एक की अनुभूति में अनन्त ही गुणों का स्वाद समाहित हो जाता है। इसके विपरीत एक-एक गुण पर्याय की अनुभूति की चेष्टा स्वयं ही वस्तुस्थिति के विरुद्ध होने से कभी भी फलित नहीं हो पाती, अतः प्रतिक्षण आकुलता ही उत्पन्न करती है; क्योंकि वस्तु के प्रत्येक प्रदेश में अनन्त गुणों की समष्टि इस तरह संगठित एवं एकमेक होकर रहती हैं कि उनमें से किसी एक के अनुभव का आग्रह अनन्तकाल में भी साकार नहीं होता वरन् अज्ञानी अपनी इस चेष्टा में प्रतिक्षण विफल-प्रयास होने से निरन्तर प्रचण्ड आकुलता को उपलब्ध करता रहता है। गुण पर्याय के अहं में अनन्त गुण पर्याय की एकछत्र स्वामिनी भगवती चैतन्य सत्ता का महान् अपमान भी होता है। अतः गुण पर्याय का अहं भी जड़ सत्ताओं के अहं के समान मिथ्यादर्शन ही है।

आत्मा के द्रव्य गुण पर्याय एक ही समय में ज्ञान के विषय तो बनते हैं किन्तु इसका यह अर्थ नहीं है कि इनको अहं भी एक ही साथ समान रूप से समर्पित किया जाये। अनेक को एक साथ जानना एक बात है और फिर उनमें से श्रद्धा (अहं) के विषय का चयन करना बिलकुल भिन्न दूसरी बात है। सभी ज्ञेय श्रद्धेय नहीं होते वरन् आत्मा के द्रव्य-गुण-पर्यायमय परस्पर विरुद्ध स्वरूप को जानकर ज्ञान ही यह निर्णय लेता है कि ये तीनों समान रूप से उपादेय नहीं हो सकते वरन् तीनों में मात्र निरपेक्ष, निर्भेद एवं निर्विशेष द्रव्य सामान्य ही उपादेय अथवा श्रद्धेय होने योग्य है। अन्य की उपादेयता स्पष्ट मिथ्यादर्शन है।

एक वार्ता यह भी बहुलता से चलती है कि जब एकान्त पर्यायदृष्टि अर्थात् पर्याय का अहं मिथ्या एवं आकुलतास्वरूप है तो एकान्त द्रव्यदृष्टि भी मिथ्या एवं आकुलतामय होना चाहिए। यह तर्क ठीक ऐसा ही लगता है कि गर्त में गिरना यदि एकान्त कष्टमय है तो सदन का निवास भी एकान्त कष्टप्रद ही होना चाहिए, किन्तु यह तर्क तो स्पष्ट अनुभूति के विरुद्ध है। जब समग्र ही पर्याय-समुदाय अज्ञान, राग-द्वेष एवं अनित्यता का आयतन है और इसके समानान्तर एक मात्र निज चैतन्य सत्ता ही शुद्ध, पूर्ण, ध्रुव एवं आनन्द-निकेतन है तो दोनों में से किसका अहं एवं किसका अवलम्बन श्रेयस्कर होगा? एक बात और है और वह यह कि ज्ञान सदा अनैकांतिक ही होता है और दृष्टि सदा एकांतिक ही होती है। द्रव्य

एवं पर्याय के परस्पर विरुद्ध दोनों पहलुओं का परिज्ञान हो जाने पर सहज ही यह निर्णय हो जाता है कि वृत्ति (दृष्टि) को दोनों में से कहाँ आराम मिलेगा। निश्चित रूप में ध्रुव द्रव्य ही शाश्वत आराममय है। इस प्रकार ध्रुव की महिमाज्ञात हो जाने पर अनादि से वृत्ति-समुदाय में पड़ा श्रद्धा का अहं विगलित होकर निज ध्रुव सत्ता के अहं में परिणत हो जाता है।

श्रद्धा का विषय इतना स्पष्ट होने पर भी प्रमाणाभास से ग्रासीभूत आग्रह श्रद्धा के विषय में पर्याय शामिल किये बिना तृप्त नहीं होते। किन्तु हमारा संतुलित विशुद्ध चिन्तन स्वयं हमें यह समाधान देगा कि श्रद्धा के विषय क्षेत्र में पर्याय के भी पदार्पण का हमारा आग्रह अविवेक तो है ही, साथ ही अत्यन्त अव्यावहारिक भी है। इस सम्बन्ध में एक अन्यन्त महत्त्वपूर्ण बात सदा दृष्टव्य है—एक प्रश्न है कि श्रद्धा का श्रद्धेय पहले से ही विद्यमान एवं पूर्ण होता हैं या श्रद्धा के क्षण में स्वयं श्रद्धा आदि वृत्तियाँ श्रद्धेय के साथ मिलकर उसे पूरा करती हैं और तब वह उसका श्रद्धेय होता हैं? यदि श्रद्धा आदि वृत्तियाँ श्रद्धेय को पूरा करती हैं तो इसका अर्थ यह हुआ कि श्रद्धेय सदा ही अपूर्ण है और अपूर्ण श्रद्धेय में श्रद्धा का सर्व-समर्पण एवं लीनता अनन्तकाल में भी सम्भव नहीं है। इस प्रकार श्रद्धेय की अपूर्णता में श्रद्धा का स्वरूप सदैव संदिग्ध, भ्रान्त एवं मलिन ही रहेगा और वह कभी भी सर्व समर्पणपूर्वक श्रद्धेय का वरण नहीं करेगी। एक बात और है—यह तो सर्वविदित है कि वर्तमान में अज्ञानी का सर्व पर्याय-

समुदाय विकारी है और स्व एवं पर, द्रव्य एवं पर्याय, विकार एवं निर्विकार आदि का तात्त्विक चिंतन एवं विश्लेषण भी अज्ञान दशा में ही प्रारम्भ होता है। अतः द्रव्य एवं पर्याय के तात्त्विक विश्लेषण में पर्याय-समुदाय के विकार का पता लग जाने पर भी उसे निर्विकारी द्रव्य के साथ मिलाकर अनुभव करने का आग्रह तो भयंकर अविवेक ही होगा और क्या इस अविवेकपूर्ण प्रयास में किसी मनोरम, रमणीक एवं परम निर्विकार श्रद्धेय की अनुभूति एवं उपलब्धि हो सकेगी? विकार को निर्विकार के साथ एकाकार करके अनुभव करने के प्रयास में वास्तव में दोनों कभी एकमेक तो होते ही नहीं वरन् इस दुराग्रह में द्रव्य एकांत विकारी ही अनुभव में आता है, कुछ विकारी एवं कुछ निर्विकारी नहीं। वास्तव में यह आग्रह शुद्ध दूध में राख मिलाकर सेवन करने तुल्य है। जब दूध एवं राख परस्पर विपरीत दो तत्त्व हैं और दोनों की अत्यंत भिन्न अनुभूति हो सकती है तो दोनों को मिलाकर सेवन करने का आग्रह तो मात्र बालचेष्टा ही होगा और इस चेष्टा में कभी भी शुद्ध दूध की अनुभूति संभवित नहीं होगी, एवं कुछ शुद्ध दूध की अनुभूति और कुछ अशुद्ध दूध की अनुभूति–ऐसा द्वैत न होकर एकांत अशुद्धता का ही अनुभव होगा। इसी प्रकार परम-निर्विकार द्रव्य एवं विकारी पर्याय समुदाय–दोनों परस्पर विपरीत दो भाव होने से दोनों में से एक समय में एक को ही अनुभूति, अत्यंत असंदिग्ध है। तब फिर दोनों को मिलाने का दुराग्रह क्यों? और यह आग्रह तो तब होना चाहिये जब एक

समय में एक के बिना दूसरे का संचेतन असंभव हो। किंतु दोनों भाव परस्पर विपरीत होने से शुद्ध चैतन्य तत्त्व की अनुभूति अशक्य एवं दुःसाध्य तो है ही नहीं वरन् सरलतम, सुखद एवं परम मंगलमय होती है अतः क्षणिक एवं विकारी पर्याय के सम्मिश्रण के बिना परमनिर्विकार द्रव्य के वेदन की अशक्यता का प्रतिपादन ज्ञान का भयंकर क्लैव्य है, फलस्वरूप तिरस्करणीय है।

वस्तुतः अज्ञानी को अपनी विशुद्ध चिंतनधारा में जब यह पता लगता है कि मेरी सत्ता तो नितान्त शुद्ध एवं अक्षय है और मेरी ही वृत्ति उसे अशुद्ध एवं नश्वर घोषित करती रही तो वृत्ति-समुदाय के मिथ्या प्रलाप का उद्घाटन हो जानेपर वृति-समुदाय में पड़ा उसका विश्वास स्खलित होकर शुद्ध चैतन्य सत्ता में अपने अहं की स्थापना कर लेता है। इस विश्वास में सदैव ही पर्याय के स्वर का निषेध प्रवर्तित होता है। इसी को पर्याय का हेयत्व कहते हैं। स्पष्ट बात तो यह है कि दृष्टि में निषेध रूप भी कोई वृत्ति प्रवर्तित नहीं होती वरन् निरन्तर निज शुद्ध चैतन्य सत्ता में अहं का प्रवर्तन ही पर्याय का निषेध अथवा हेयत्व कहा जाता है। फिर भी यदि हमारा पूर्वाग्रह विकारी एवं अनित्यवृत्ति-समुदाय को परमनिर्विकारनित्य द्रव्य के साथ मिला कर अपने श्रद्धेय की रचना करेगा तो उस श्रद्धेय का क्या स्वरूप होगा, इसकी कल्पना भी सम्भव नहीं है। सम्भवतः इस मिथ्या एवं विफल प्रयास में श्रद्धा एवं श्रद्धेय का सम्पूर्ण सौन्दर्य ही नष्ट हो जावेगा। इसी प्रकार भावी निर्विकारी पर्याय-समुदाय

को द्रव्य में मिलाकर श्रद्धा करने का आग्रह भी समान कोटि का मिथ्यादर्शन ही है, क्योंकि भावी निर्मल पर्यायें तो वर्तमान में विद्यमान ही नहीं हैं, अतः उस अविद्यमान सत् को विद्यमान द्रव्य में मिलाने की विधि क्या होगी ? दूसरी वजनी बात यह है कि कोई भी पर्याय नित्य विद्यमान निर्विकारी निज चैतन्य सत्ता के अवलम्बन पर शुद्ध होती है, न कि शुद्ध पर्याय का अवलम्बन होता है।

इस संदर्भ में एक अत्यन्त सुन्दर मनोवैज्ञानिक तर्क भी हमें समाधान देगा—कि जब इस विश्व की अनंत सत्ताओं की तरह निज चैतन्य सत्ता भी संपूर्ण एवं सुन्दर है एवं विश्व की प्रत्येक सत्ता के पास जितना वैभव है उतना ही हमारे पास भी है, तथा अन्य सत्ताओं के स्वामी अन्य द्रव्य ही हैं और अन्य द्रव्य ही होने चाहिएँ एवं उनके स्वामित्व का हमें कोई अधिकार भी नहीं हो सकता और होना भी नहीं चाहिए, तो फिर संपूर्ण एवं सुन्दर स्व-सदन (स्व-सत्ता) का अवलंबन छोड़कर पर-सदन (पर-सत्ता) में प्रवेश का यत्न क्या वैध एवं विधेय होगा ? और क्या इस बलात्कार में शान्ति एवं आनन्द की उपलब्धि हो सकेगी ? निश्चित ही नहीं होगी वरन् यह यत्न विश्व का महान् अपराध घोषित किया जायगा।

पुनः एक अत्यंत हृदयग्राही तथ्य भी हमारा ध्यान आकर्षित करेगा और वह यह कि वस्तु की वृत्ति को स्वयं वस्तु में ही विराम न मिले, यह विधान किसने बनाया ? माँ की गोदी में अपने ही बालक को धारण करने की क्षमता कब नहीं रहेगी ? और वस्तु की वृत्ति अपनी ही

वस्तु के अनंत एवं अपरिमित वैभव में संतुष्ट न हो और अन्य की ओर आकर्षित होकर अन्य सत्ताओं में अपना प्रेय एवं श्रेय तपासती फिरे, जगत् में इससे बड़ा आश्चर्य भी क्या होगा ? सुमन की सौरभ को स्वयं अपने सुमन में संतोष नहीं, तो फिर जगत् में वह कौन-सा सुमन होगा जो इस सौरभ को अपने में शरण देगा ? और वृत्ति को वृत्तिमान में विराम न मिले, लोक में यह लचर व्यवस्था किसने पैदा की ? निश्चित ही इस कल्पना में किसी स्वस्थ एवं सुन्दर विश्व की उपलब्धि तो नहीं हो सकेगी। अतः वृत्ति को वृत्तिमान का अवलंबन ही विश्व का परम सौन्दर्य है।

शुद्ध चैतन्य सत्ता मिथ्यादर्शनादि विकारी पर्याय-समुदाय से विकारी नहीं बनती, वरन् उस शुद्ध चैतन्य सत्ता का अदर्शन अर्थात् अविश्वास ही मिथ्यादर्शन की विकारी पर्याय है। इसी प्रकार वह चैतन्य सत्ता सम्यग्-दर्शनादि शुद्ध पर्याय के उत्पन्न होने पर शुद्ध नहीं होती वरन् उस शुद्ध चैतन्य सत्ता का दर्शन अर्थात् अहं ही सम्यग्दर्शन की शुद्ध पर्याय है। इस प्रकार चैतन्य सत्ता की त्रैकालिक शुद्धता एवं सर्व पर्याय-निर्पेक्षता अत्यन्त निरापद है और सर्व ही अनित्य एवं विकारी पर्याय-समुदाय उसकी ध्रुव परिधि के बाहर रह जाता है। यहाँ तक कि ध्रुव सत्ता के अहं को सम्यग्दर्शन कहा तो जाता है, किन्तु सम्यग्दर्शन वास्तव में ध्रुव का अहं नहीं वरन् स्वयं ध्रुव है। इस प्रकार स्वयं सम्यग्दर्शन भी सम्यग्दर्शन की परिधि (ध्रुव) के बाहर रह

जाता है और द्रव्य—यद्यपि पर्याय स्वरूप पूरे आत्म-पदार्थ में सम्यग्दर्शन का विषय पदार्थ का ध्रुव सामान्य द्रव्यांश ही होता है, किन्तु अंश होने से वह अपूर्ण नहीं वरन् स्वयं ही पूर्ण है और दृष्टि (श्रद्धा) भी उसमें अंश का नहीं वरन् पूर्ण का अनुभव करती हुई स्वयं पूर्ण है। इस प्रकार दोनों अंशों की पूर्णता ही वस्तु की पूर्णता है। ध्रुव को अंश मानकर श्रद्धा करना प्रकारान्तर से मिथ्या-दर्शन ही है। जैसे ग्यारह के अंक में एक के दोनों अंक अपने-अपने में पूर्ण ही हैं। इस प्रकार दोनों की पूर्णता ही ग्यारह की पूर्णता है। यदि एक के दोनों अंक अपूर्ण हों तो ग्यारह का पूर्णांक ही उपलब्ध नहीं होगा, क्योंकि दो अपूर्ण स्वयं तो कभी पूरे होते ही नहीं, किन्तु दोनों मिलकर भी किसी एक पूर्ण स्वरूप को निष्पन्न नहीं कर सकते। यह वस्तु-स्वभाव की स्वयंसिद्ध विलक्षणता ही है।

वास्तव में सम्यग्दर्शन को जो 'ध्रुव का अहं' कहा जाता है, वह बात ज्ञान की ओर से है, किन्तु सम्यग्दर्शन स्वयं अपने को 'ध्रुव का अहं' स्वीकार नहीं करता वरन् ध्रुव स्वीकार करता है। अपने समक्ष विद्यमान 'ध्रुव' में 'मैं ध्रुव हूँ' ऐसी उसकी अभेद स्वीकृति होती है और इस अभेद स्वीकृति को ही 'ध्रुव का अहं' कहते हैं। 'अहं मय ध्रुव' श्रद्धा का श्रद्धेय नहीं होता। श्रद्धा का श्रद्धेय इतना पूर्ण एवं सर्वोपरि होता है कि वह उसमें अपने को मिलाने का अवकाश नहीं पाती। वास्तव में 'पूर्ण' में 'पूर्ण के अहं' के मिलने की भी कोई गुंजाइश नहीं होती, अतः उस पूर्ण में 'पूर्ण के अहं' का भी त्रिकाल

अभाव है और जिसमें कुछ मिलाया जा सके वह पूर्ण कैसा ? अतः यदि श्रद्धा का स्वर यह हो कि 'मैं पूर्ण का अहं हूँ', तो इस स्वर में 'पूर्ण का अहं' नहीं वरन् 'अहं का अहं' प्रवर्त्तित होता है और 'अहं के अहं' को अन्य की आवश्यकता नहीं है। अतः यदि श्रद्धा को अपने में ही (पर्याय को पर्याय में) ही विश्राम मिल जाता है तो फिर वह क्यों आलम्बन तपासती है ? और यदि वह आलम्बन तपासती ही रही तो इसका अर्थ यह है कि उसे स्वयं अपने में विराम नहीं मिला। अतः स्वयं 'अहं एवं 'अहं की मिलावट वाला पूर्ण' श्रद्धा का आलम्बन नहीं होता वरन् निरपेक्ष पूर्ण उसका आलंबन होता है अतः श्रद्धा में स्वयं श्रद्धा का भी अत्यंत तिरोभाव होकर एक मात्र 'पूर्ण' का वर्चस्व ही आविर्भूत रहता है। उसमें ज्ञान की भांति मुख्य एवं गौण की कोई व्यवस्था नहीं है। 'ध्रुव' तत्त्व श्रद्धा के लिये मुख्य तत्त्व नहीं, वरन् वह उसका सर्वस्व ही है। इसीलिये सम्यग्दर्शन स्वयं अपने को मिटाकर ध्रुव का दर्शन करता है। वह अपने को 'गौण' की कक्षा में भी नहीं रखता। वास्तव में अपने को बचाकर श्रद्धेय को अपना समर्पण करने की वार्ता तो एकदम छल एवं छद्म है। स्वयं को मिटाये बिना समर्पण का स्वरूप ही नहीं बन सकता। इसीलिये सम्यग्दर्शन की दुनियां में सम्यग्दर्शन संज्ञा वाली कोई वस्तु ही नहीं है। राधा ने जगत् में राधा को कभी देखा ही नहीं। उसकी दुनियां कृष्ण की बनी थी। श्रद्धा की इस अनंत शून्यता में ही 'ध्रुव'

की मंगलमय बस्ती बसती है और इसीलिये श्रद्धा का, यह अद्वैत अनंत आनंदमय होता है।

इस पद्धति में आत्मा को मात्र ध्रुव मानने से उसमें पर्याय का अभाव नहीं हो जाता, वरन् 'ध्रुव एवं ध्रुव की श्रद्धा', 'पूर्ण एवं पूर्ण का अहं', इस प्रकार दोनों अंशों की निरपेक्ष पूर्णता में आत्म-पदार्थ द्रव्य-पर्यायस्वरूप पूर्ण ही बना रहता है, जैसे शरीर के प्रत्येक अंग की पूर्णता ही शरीर की पूर्णता है। यदि शरीर के सभी अंग अधूरे हों तो सब अधूरे अंगों से एक पूर्ण शरीर तो निष्पन्न नहीं हो सकता। इसी प्रकार 'आधा द्रव्य एवं आधी पर्याय' यह पदार्थ का स्वरूप नहीं वरन् 'पूर्ण द्रव्य एवं पूर्ण पर्याय' यह पदार्थ का स्वरूप होता है। वास्तव में ध्रुव को अंश मानने वाली श्रद्धा में पूर्णता की प्रतीति ही नहीं होगी, फलस्वरूप अनुभूति में आनन्द की निष्पत्ति ही नहीं होगी; वरन् अंश अर्थात् अपूर्ण की प्रतीति होने से सदा हीं ऐसा लगता रहेगा कि आत्मा में अभी कुछ कमी है। निश्चय ही श्रद्धा आदि वृत्तियों का कार्य ध्रुव आत्मा में कुछ करना नहीं वरन् उसे ध्रुव मात्र मानना होता है। 'मैं ध्रुव हूँ' यही सम्यग्दर्शन का स्वर है। सम्यग्दर्शन की काया ध्रुव से ही निर्मित है। उसमें सर्वत्र ध्रुव ही पसरा है। अनित्यता उसमें है ही नहीं। उसे विश्व में ध्रुव के अतिरिक्त अन्य सत्ता का स्वीकार ही नहीं है। उसका विश्व ही ध्रुव है। यदि दृष्टि में ध्रुव के अतिरिक्त अन्य सत्ता का भी स्वीकार हो तो दृष्टि का स्वभाव अहं होने के कारण उसे अन्य

सत्ता में अहं हुए बिना नहीं रहेगा और यही अहं मिथ्या-दर्शन है। 'मेरी सत्ता ध्रुव है', सम्यग्दर्शन को द्रव्य-पर्याय का यह भेद भी बर्दाश्त नहीं है। दृष्टि (श्रद्धा) का स्वरूप ही ऐसा है। उसे ज्ञान की तरह स्व-पर का भेद करना नहीं आता, उसे तो अहं करना आता है। उसके लोक में कोई पर है ही नहीं। वह मिथ्या होती है तब भी उसे सब स्व ही दिखाई देता है, तब सम्यक् होने पर तो उसकी परिधि में अन्य भावों का प्रवेश कैसे सम्भव है? और तो और, सम्यग्दर्शन के घर में स्वयं अपने रहने के लिए भी कोई जगह नहीं है। उसने अपना कोना-कोना ध्रुव के लिए खाली कर दिया है।

सौराष्ट्र के सन्त ने भव के अन्त के लिए 'ध्रुव' का यह मंगल सूत्र लोक को दिया। उन्होंने सम्यग्दर्शन के जिस स्वरूप का अनुसंधान किया वह इस युग का एक आश्चर्य है। सम्यग्दर्शन के इस सूक्ष्म एवं अद्भुत स्वरूप का इस युग को स्वप्न भी नहीं था। वास्तव में श्री कानजी स्वामी इस युग में सम्यग्दर्शन के आविष्कर्त्ता हैं और यह भवान्तक सम्यग्दर्शन इस युग को उनका सबसे महान् वरदान है। इसके स्वरूप का बोध उनके बिना सम्भवित ही नहीं था। उन सत्पुरुष ने सम्य-ग्दर्शन के सम्बन्ध में प्रचलित सभी भ्रान्तियों को प्रक्षालित कर दिया। कोई कहते थे कि सच्चे देव, गुरु, धर्म की श्रद्धा ही सम्यग्दर्शन है तो कोई सात तत्त्व की श्रद्धा। किसी ने तो यहाँ तक कहने का दुस्साहस किया कि जैन कुल में जन्म ही सम्यग्दर्शन है। कहीं से आवाज आई

कि सम्यग्दर्शन काल-लब्धि आने पर अपने आप होता है, उसके लिए पुरुषार्थ अपेक्षित नहीं है और उत्पन्न हो जाने पर भी स्वयं को उसका पता नहीं चलता; किन्तु उन महापुरुष ने रहस्योद्घाटन किया कि इनमें से एक भी सम्यग्दर्शन नहीं है। इन सबकी समग्रता में भी प्रचंड अन्तर-पुरुषार्थ के बिना सम्यग्दर्शन नहीं होता। सम्यग्दर्शन का उद्भव होने पर साधक को निज शुद्ध चैतन्य सत्ता की लोनता में अतीन्द्रिय आनन्द का प्रत्यक्ष संवेदन होता है। आगम का अक्षर-अक्षर इसका साक्षी है। उन सन्त ने सम्यग्दर्शन के इस निश्चय पक्ष का ही विवेचन नहीं किया, वरन् उसके व्यावहारिक पक्ष का भी प्रबल समर्थन किया। उन्होंने कहा "सम्यग्दृष्टि मिथ्यात्व, अन्याय एवं अभक्ष का सेवन नहीं करता। उसका लोक-जीवन बड़ा पवित्र होता है। वह स्वप्न में भी अतत्त्व एवं असत्य का समर्थन नहीं करता। वही सच्चे देव, गुरु, धर्म का सच्चा उपासक होता है। जीवन में इस विशुद्धि के प्रादुर्भाव के बिना सम्यग्दर्शन नहीं होता। उसका जन्म पवित्र मनोभूमि में ही होता है।"

सम्यग्दर्शन की गरिमा को गाते-गाते वे सन्त विभोर हो जाते हैं। वे कहते है—सम्यग्दर्शन जीवन की कोई महान् उपलब्धि है। वह जीवन-तत्त्व एवं जीवन-कला है। उसके बिना जीवन—मृत्यु का ही उपनाम है। ज्ञान में स्व-पर का भेद समझने की क्षमता होने पर सम्यग्दर्शन हर परिस्थिति में हो सकता है। सातवें नरक की भयंकरता अथवा स्वर्गों की सुषमा उसमें बाधक नहीं

होती। कर्मकाण्ड के कठिन विधान उसकी उत्पत्ति में मदद नहीं करते। उसे घर नहीं छोड़ना है, देह का विसर्जन नहीं करना है, वरन् घर एवं देह में रहकर ही उनसे अहं तोड़ना है। इसीलिए सम्यग्दर्शन सरल है। कठिन की कल्पना ही कठिनाई है। सम्यग्दर्शन अनुकूल अथवा प्रतिकूल परिस्थितियों का दासत्व स्वीकार नहीं करता। इसीलिए नरक एवं स्वर्ग के विषम वायुमण्डल में भी 'मैं नारकी नहीं', 'मैं देव नहीं' वरन् 'मैं तो अक्षय चैतन्य तत्त्व हूं" ऐसे अविराम संचेतन में उसका जन्म हो जाता है। इसीलिए वह हर गति में होता है।" इस युग में सम्यग्दर्शन श्री कानजी स्वामी की एक ऐसी शोध है जिसने मृत्यु की ओर बढ़ते युग के चरण जीवन की ओर लौटा दिये हैं। यह कहना अतिशयोक्ति न होगी कि उस सन्त के सम्यग्दर्शन ने मृत्यु को ही मार कर विश्व से उसकी सत्ता ही समाप्त कर दी है।

श्री कानजी स्वामी एवं चारित्र—सम्यग्दर्शन एवं सम्यग्ज्ञान की तरह पूज्य गुरुदेव ने चारित्र का भी एक प्राञ्जल स्वरूप प्रस्तुत किया। वे चारित्र के महान् उपासक हैं। चारित्रवन्त दिगम्बर सन्तों के अन्तर-बाह्य स्वरूप का वर्णन करते-करते वे अघाते नहीं हैं। सहस्रों बार उनके अन्तःस्तल से ये उद्गार सहज ही निकल पड़ते हैं कि "ऐसे वन-विहारी नग्न दिगम्बर वीतराग सन्तों के दर्शन हमें कब प्राप्त हों और वह अवसर कब आवे जब उस आनन्दमय नग्न दिगम्बर दशा की हमें उपलब्धि हो।" कुन्दकुन्द एवं अमृतचन्द्र जैसे अनन्त

भावलिंगी सन्तों के चरणों में उनका मस्तक सदा नत रहता है। आनन्द में झूलते दिगम्बर सन्तों के हृदय के मर्म को आज वे ही पहिचान पाये हैं। मुनित्व के बाह्य इतिवृत्तों में मुनि का आत्मा खो गया था। चारित्र को कठिन एवं कष्टसाध्य माना जाता था। चारित्र के उस महान् उपासक की वाणी के माध्यम से चारित्र का सही स्वरूप आज निखरा है। कोरे शुभ अनुष्ठानों की काली कारा में चारित्र जैसे जीवन-तत्त्व को कैद करने के सभी प्रयत्न आज उस सन्त ने विफल कर दिये हैं। उन्होंने शंखनाद फूँका "चारित्र न तो घरबार आदि बाह्य संयोगों का वियोग मात्र है और न कर्मकाण्ड की छलांगें। न कोरा नग्नत्व ही चारित्र है और न महाव्रत, समिति आदि का पराश्रित शुभाचार। उपसर्ग एवं परीषह झेलना भी चारित्र नहीं तो इन्द्रियों का दमन एवं भयंकर कायक्लेश भी चारित्र नहीं, वरन् स्वरूप में अन्तर्लीन आनन्द वृत्ति ही चारित्र है।"

श्री कानजी स्वामी ने चारित्र के अनिवार्य सहचर शुभाचार का भी, जिसे व्यवहार चारित्र कहते हैं, पूरा समर्थन किया। उन्होंने कहा, "शुभाचार जो मात्र मंद कषाय की ही पर्याय है उसे चारित्र मानना तो मिथ्या-दर्शन है ही, किन्तु वीतराग चारित्र के अनिवार्य सहचर शुभाचार का सत्व ही स्वीकार न करना भी समान कोटि का मिथ्यादर्शन ही है।" मुनित्व की भूमिका में उग्र चारित्र के साथ रहने वाले शेष कषायांश इतने मंद हो जाते हैं कि उनकी अभिव्यक्ति २८ मूलगुणरूप शुभाचार

के रूप में ही होती है। अतएव श्री कानजी स्वामी कहते हैं कि यद्यपि नग्नता मुनित्व नहीं किन्तु मुनि नग्न ही होते हैं और अन्तरंग परिग्रह के अभाव के साथ उनके तिल-तुष मात्र भी बाह्य परिग्रह नहीं होता। मुनि का स्वरूप जमाने के अनुसार नहीं बदलता वरन् उनका त्रैकालिक स्वरूप एक ही होता है। उन्होंने व्यवहार चारित्र का बड़ा सुन्दर स्पष्टीकरण किया और कहा कि "व्यवहार (शुभ भाव) कोई चारित्र नहीं है वरन् वह तो अचारित्र भाव में चारित्र का आरोप मात्र है, क्योंकि अन्तरंग वीतराग चारित्र के साथ वह शुभ भाव-भूमि नियम से होती है तथा उस शुभ भाव-भूमि के प्रगट हुए बिना वीतराग चारित्र भी प्रकट नहीं होता। इस अनुरोध से मन्द कषायरूप उस अचारित्र भाव को भी चारित्र कहने की एक पद्धति है और इसी पद्धति को व्यवहार कहते हैं। किन्तु वस्तुतः चारित्र तो आनन्दमय वीतराग भाव ही है और वही मोक्षमार्ग है। मन्द कषायरूप व्यवहार चारित्र—चारित्र का विकार मात्र है। वह थोड़ा भी चारित्र नहीं हैं और सर्व ही बन्धस्वरूप है।"

सम्यग्दृष्टि को जीवन में सदा ही चारित्र के प्रादुर्भाव की उग्र भावना प्रवर्तित होती है। उसे भले ही पुरुषार्थ की निर्बल गति के कारण चारित्र नहीं होता किन्तु वह कभी भी चारित्र को आनन्दमय वृत्ति के प्रति उदासीन एवं प्रमादी भी नहीं होता। अतः निश्चित ही उसे इस भव अथवा भवान्तर में चारित्र का उदय होता है। मोक्षमार्ग की क्रमिक भूमिकाओं का उल्लंघन करके

जल्दबाजी करने से चारित्र नहीं आता, वरन् शुद्ध चैतन्य तत्त्व की उग्र भावना से ही जीवन में चारित्र का उदय होता है।

श्रद्धा, ज्ञान, चारित्र का तो विशद विवेचन श्री कानजी स्वामी की वाणी में हुआ ही है, किन्तु साथ ही जैन दर्शन के आधारभूत सिद्धान्त निश्चय-व्यवहार, निमित्त-उपादान एवं आर्हत दर्शन का प्राण अनेकांत आदि का जो अत्यन्त प्रामाणिक, आगम-सम्मत एवं सतर्क प्रतिपादन हुआ है वह चित्त को चकित कर देता है। सम्भवतः जैन दर्शन का आधारभूत कोई सिद्धान्त ऐसा नहीं है जिसमें उनके ज्ञान एवं वाणी का व्यवसाय नहीं हुआ हो। अध्यात्म का ऐसा सांगोपांग एवं व्यापक विवेचन तो शताब्दियों में नहीं हुआ। बयालीस वर्ष से अध्यात्म की बरसातें करती हुई उनकी प्रज्ञा ने अज्ञान की जड़ें हिला दी हैं। तीर्थंकरों एवं वीतराग सन्तों के हृदय का मर्म खोलकर उन्होंने हमें तीर्थंकरों के युग तक पहुँचा दिया है। उनकी प्रज्ञा ने आगम के गम्भीर रहस्यों की थाह लेकर जो मर्म निकाले हैं वह इस युग का एक आश्चर्य-सा लगता है। वाणी का यह कमाल कि बयालीस वर्ष के धारावाहिक प्रवचनों में कहीं भी पूर्वापर विरोध नहीं है। आत्म-प्रसिद्धि, नय प्रज्ञापन एवं अध्यात्म संदेश जैसी साहित्यिक निधियाँ उनकी निर्मल एवं पैनी प्रज्ञा के ऐसे प्रसव हैं जिन्हें देखकर आज के युग का बौद्धिक अहं उनके चरणों की धूल में धूसरित होकर गर्व का अनुभव करेगा। उनके प्रवचनों से कल्पनातीत आध्यात्मिक साहित्य का

सर्जन हुआ है। शाश्वत शान्ति के विधि-विधानों से भरे उनके आध्यात्मिक साहित्य ने भारतीय साहित्य का शीश विश्व में ऊँचा किया है। वह साहित्य युग-युग तक शांति के पिपासुओं को सच्ची शान्ति का दिशा-निर्देशन करता रहेगा। उन्होंने जिस आध्यात्मिक क्रान्ति को जन्म दिया है, उसने युग के प्राण मौत के मुंह से निकाल दिये हैं। आज जन-जन के श्वास-प्रश्वास में अमरत्व का संचार होने लगा है। आज के त्रस्त जन-जीवन को उनकी वाणी में सही राह एवं राहत मिली है। श्री कानजी स्वामी का युग भारतीय इतिहास एवं श्रमण संस्कृति का एक स्वर्ण युग होगा। उन्होंने भारतीय इतिहास में एक बेजोड़ अध्याय जोड़ा है। वे उस क्रान्ति के उन्नायक महामानव हैं जिसका जन्म रक्त में नहीं विरक्त में होता है, जिस क्रान्ति के उदय में आत्मा क्लान्ति का नहीं, वरन् मंगलमय शान्ति का संवेदन करता है। लक्ष-लक्ष मानवों ने उनकी इस शांति-वाहिनी क्रान्ति का समर्थन किया है और उसके सत्य को परख कर उसमें दीक्षित हुए हैं। आज लोक का यह स्वर कि "यदि यह मुक्तिदूत नहीं होता तो हमारी क्या दशा होती ?" लोक हृदय की सच्ची अभिव्यंजना है। निस्संदेह श्री कानजी स्वामी लोक मांगल्य की प्रतिष्ठा करने वाले एक लोकदृष्टा युग-पुरुष हैं।

इन महापुरुष का अन्तर जैसा उज्जवल है, वाह्य भी वैसा ही पवित्र है। उनकी अत्यन्त नियमित दिनचर्या, सात्विक एकरूप एवं परिमित आहार, आगम सम्मत सत्य सम्भाषण, करुण एवं सुकोमल हृदय उनके विरल

व्यक्तित्व के अभिन्न अवयव हैं। ८७ वर्ष की अति वृद्ध अवस्था में भी उनकी दिनचर्या इतनी नियमित एवंसंयमित है कि एक क्षण भी व्यर्थ नहीं जाता। "समयं गोयम मा पमायए" की वीर वाणी उनकेजीवनमें अक्षरशःचरितार्थ हुई है। शुद्धात्म तत्त्व का अविराम चिन्तन एवं स्वाध्याय ही उनका जीवन है। जैन श्रावक के पवित्र आचार के प्रति वे सदैव सतर्क एवं सावधान हैं। उसका उल्लंघन उन्हें सह्य नहीं है। उनके जीवन का प्रत्येक स्थल अनुकरणीय है। निश्चित ही वे इस जगत् के वैभव हैं और युग उन्हें पाकर गौरवान्वित हुआ।

वे युग पुरुष युगों-युगों तक मुक्ति का संदेश प्रसारित करते हुए युग-युग जीवें, यही आज के युग-अन्तस् की एक मात्र कामना है।

मैं उन युग पुरुष की ८७वीं जयन्ती के पुण्य पर्व पर अपनी श्रद्धा के अनन्त सुमन उनके चरणों में चढ़ाता हूं!!

दानियों को देखना तो तीर्थों पर जाइए,
संगमरमर पर खुदे हैं नाम खुद पढ़ जाइए,
धर्म और धर्मात्मा ऐसे बहुत मिल जायेंगे,
आत्मा को देखना तो सोनगढ़ में जाइए।

—हजारीलाल 'काका'

हमतो उनके दासानुदास हैं :

एक इन्टरव्यू कानजी स्वामी से

"स्वामीजी मुनि विरोधी हैं, नया पंथ चला रहे हैं" आदि न जाने कितनी बे-सिर-पैर की अफवाहें आजकल बुद्धिपूर्वक उड़ाई जा रही हैं।

उक्त सन्दर्भ में स्वामीजी के विचार समाज तक पहुंचें, इस पवित्र भावना से संपादक आत्मधर्म द्वारा वि० २७-१२-७७ को सोनगढ़ में स्वामीजी से लिया गया यह चौथा इन्टरव्यू आत्मधर्म के जिज्ञासु पाठकों की सेवा में प्रस्तुत है।

"मुनिराज तो चलते-फिरते सिद्ध हैं, हम तो उनके दासानुदास हैं"—उक्त शब्द पू० स्वामीजी ने तब कहे जब उनसे पूछा गया कि कुछ लोग कहते हैं कि आप मुनिराजों को नहीं मानते, उनका अपमान करते हैं, उनकी निन्दा करते हैं।

अपनी बात को स्पष्ट करते हुए उन्होंने कहा—"अपमान तो हम किसी का भी नहीं करते, निन्दा भी किसी की नहीं करते; फिर मुनिराजों की निन्दा करने का तो प्रश्न ही कहाँ उठता है। शुद्धोपयोग की भूमिका में झूलते हुए नग्न दिगम्बर परम पूज्य मुनिराज तो एक प्रकार से

चलते-फिरते सिद्ध हैं, हम तो उनके दासानुदास हैं। उनकी चरणरज अपने मस्तक पर धारण कर कौन दिगम्बर जैन अपने को भाग्यशाली नहीं मानेगा ?"

कहते-कहते जब वे भावमग्न हो गये तब मैंने उनकी मग्नता को भंग करते हुए कहा—"आजकल कुछ लोगों द्वारा यह प्रचार बहुत जोरों से किया जा रहा है कि आप मुनि विरोधी हैं।"

तब वे अत्यन्त गम्भीर हो गये और बोले—"मुनिराज तो संवर और निर्जरा के मूर्त्तिमान स्वरूप हैं। मुनि-विरोध का अर्थ है—संवर और निर्जरा तत्त्व की अस्वीकृति। जो सात तत्त्वों को भी न माने वह कैसा जैनी ? हमें तो उनके स्मरण मात्र से रोमांच हो आता है। 'णमो लोए सव्वसाहूणं' के रूप में हम तो सभी त्रिकालवर्ती मुनिराजों को प्रतिदिन सैंकड़ों बार नमस्कार करते हैं।"

"आजकल यह भी कहा जा रहा है कि आप पार्श्वनाथ भगवान की फणावाली मूर्त्ति को नहीं पूजते, पूज्य नहीं मानते और उन्हें पानी में विसर्जित करने की प्रेरणा देते हैं—क्या यह बात सच है ?"

भाई ! क्या बात करते हो ? यहाँ सोनगढ़ के मूल मन्दिर में ही भगवान पार्श्वनाथ की फणावाली मूर्त्ति है। वह लगभग छत्तीस वर्ष से विराजमान है और तब तक रहेगी जब तक मन्दिर है। सभी प्रतिदिन अन्य सभी मूर्त्तियों के समान उसकी भी पूजन-वंदना करते हैं।

अंतरिक्ष पार्श्वनाथ शिरपुर में पार्श्वनाथ भगवान की फणावाली मूर्ति की हमारे हाथ से प्रतिष्ठा हुई है। उस

पर अंकन्यास विधि हमने अपने हाथ से की है। उस प्रतिष्ठा की फिल्म भी बनी थी। वह वहाँ सुरक्षित होगी। तुम उसे आज भी देख सकते हो।

बाहुबली की बेलवाली मूर्त्ति के बारे में भी यही बात है। हम तीन-तीन बार बाहुबली की यात्रा के लिए गये हैं। वहाँ उनकी पूजन-वंदना की है।

फणवाली पार्श्वनाथ की और बेलवाली बाहुबली की प्रतिष्ठित मूर्त्तियाँ अन्य प्रतिष्ठित मूर्त्तियों के समान ही पूज्य हैं।"

"यदि ऐसी बात है तो फिर आप उन्हें विसर्जन करने की प्रेरणा क्यों देते हैं?"

"कौन देता है? कब दी? तुम भी गजब करते हो? हमने तो आज तक किसी को कुछ नहीं कहा। विसर्जन की बात तो हम सोच भी नहीं सकते।"

"सुना है, कहीं विसर्जित कर दी गई है?"

"नहीं, हमने तो नहीं सुना। ऐसा महान पाप कोई जैनी तो नहीं कर सकता। अधिक हम क्या कहें?"

"समाज वैसे ही अनेक पंथों में बटा हुआ है—जैसे तेरापंथ, बीसपंथ, तारणपंथ, गुमानपंथ आदि। फिर आप और क्यों नया पंथ चला रहे हैं?"

"हमने तो कोई नया पंथ नहीं चलाया और न चला रहे हैं। हमारा तो पंथ एक ही है और वह है आचार्य कुन्दकुन्द का 'सत्यपंथ निर्ग्रन्थ दिगम्बर'। जो कुन्दकुन्दाम्नाय का मूल दिगम्बर मार्ग है, हमने तो उसी को

बुद्धिपूर्वक स्वीकार किया है, उसी पर चल रहे हैं। हमने कोई नया मार्ग नहीं पकड़ा। अनादिनिधन जो मूल मार्ग है, वही हमारा मार्ग है। जिस पथ पर परमपूज्य आचार्य कुन्दकुन्द, अमृतचन्द्र, भूतबलि, पुष्पदन्त, नेमिचन्द्र चले– पं० बनारसीदासजी और टोडरमलजी चले; उसी पर हम चल रहे हैं, वही हमारा पंथ है।"

"आपकी प्रासुक पूजनपद्धति, क्षेत्रपाल-पद्मावती आदि को नहीं पूजना, मात्र जल से अभिषेक करना आदि क्रियाएँ तो शुद्ध तेरापंथ आम्नाय से मिलती हैं?"

"अरे भाई! तुम कहाँ पंथ की बात ले बैठे? ये सब तो मूल दिगम्बर धर्म की बातें हैं। ये सब तो भूमिकानुसार सद्गृहस्थ के होती ही हैं, मूल बात तो आत्मा के अनुभव की है। जब तक आत्मा नहीं जाना तब तक सब क्रिया-काण्ड अंक बिना बिन्दी के समान है।"

"आत्मा के अनुभव की बात तो मूल है ही, पर सामाजिक शान्ति भी तो आवश्यक है?"

"क्यों नहीं? पर सामाजिक शान्ति का उपाय भी आध्यात्मिक वातावरण ही है। यदि समाज में पूर्णतः आध्यात्मिक वातावरण रहे तो फिर अशान्ति होगी ही नहीं।"

"यह बात तो पूर्णतः सत्य है कि आपके द्वारा दिगम्बर जैनसमाज को एक आध्यात्मिक वातावरण प्राप्त हुआ है। सौराष्ट्र में जहाँ दिगम्बर जिनमन्दिरों के दर्शन

दुर्लभ थे, वहाँ आज पद-पद पर विद्यमान विशाल दिगम्बर जिनमंदिरों के दर्शन कर चित्त प्रफुल्लित हो जाता है। आपने लाखों नये दिगम्बर जैन बनाए हैं। लाखों जन्मजात दिगम्बरों को भी दिगम्बर धर्म का मूल तत्त्व बताकर सन्मार्ग में लगाया है। चारों अनुयोगों के दिगम्बर जिनशास्त्रों को बीस लाख से भी अधिक प्रतियों में प्रकाशित कराके अत्यल्प मूल्य में घर-घर पहुँचा दिया है। सैकड़ों आत्मार्थी विद्वान तैयार कर दिये हैं।

यद्यपि समाज का एक बहुत बड़ा भाग आपके इस महान उपकार को स्वीकार करता है, आपके प्रति अत्यन्त वात्सल्य एवं बहुमान का भाव रखता है; तथापि कुछ लोग न जाने क्यों आपका विरोध करते हैं और अत्यन्त शान्तिप्रिय धार्मिक समाज का वातावरण अशान्त करने पर तुले हुए हैं। क्या इस सम्बन्ध में आप कुछ कहना चाहेंगे ?"

"नहीं, इस संबंध में हमें कुछ नहीं कहना है। हम क्या कहें, जिसकी जैसी होनहार होगी उसका वैसा ही परिणमन होगा।

हमने किसी का कुछ नहीं किया है। जिन्हें सन्मार्ग प्राप्त हुआ है, वह उनको उनकी योग्यता-पात्रता से प्राप्त हुआ है, उसमें हमने कुछ नहीं किया है। तथा जिन्हें द्वेष जगता है, वह भी उनकी अपनी स्वयं की योग्यता से है, उसके कारण भी हम नहीं हैं। हम तो अपनी परिणति के कर्त्ता-धर्त्ता हैं, दूसरों की परिणति के नहीं। कोई भी

व्यक्ति द्वेष या घृणा का पात्र नहीं है। सबसे समता भाव रखना ही ज्ञानी का काम है।

रही तत्त्वप्रचार की बात। सो यह तत्त्वप्रचार का काल पका है। सबकी होनहार अच्छी है – सो हो रहा है। इसमें भी हमारा क्या? हमारी तो यही भावना है सब भगवान महावीर एवं कुन्दकुन्दादि आचार्यों के बताये सन्मार्ग पर लगें और अपनी अनन्त निधि को प्राप्तकर अनन्त सुखी हों।"

"वर्त्तमान वातावरण के संदर्भ में आत्मार्थी बन्धुओं एवं दिगम्बर जैन समाज को क्या आप कोई आदेश या संदेश देना चाहेंगे? यदि आपका कोई आदेश या संदेश या मार्गदर्शन समाज को प्राप्त हो जाय तो बड़ा उपकार होगा।"

"भाई! हम तो किसी को आदेश देते ही नहीं, धर्म मार्ग में आदेश का क्या काम? रही बात संदेश की सो हमारा तो सदा ही और सभी को एक ही संदेश है कि अनुकूल-प्रतिकूल समस्त जगत पर से दृष्टि हटाकर एकमात्र ज्ञायकस्वभावी आत्मा की ओर दृष्टि ले जावो, उसी का अनुभव करो, उसी में जम जावो, उसी में रम जावो – यही एकमात्र सुख-शान्ति प्राप्त करने का अमोघ उपाय है।

यह दुनिया तो ऐसे ही चलती रहेगी – कभी कुछ, कभी कुछ। इसकी ओर देखते रहोगे तो अमूल्य मनुष्यभव यों ही चला जायगा और फिर पता ही न चलेगा कि चौरासी लाख योनियों में कहाँ गये।

अच्छा-बुरा वातावरण तो तात्कालिक चीज है। समय पर सब स्वयं ठीक हो जाता है। इसकी अधिक चिन्ता करने की आवश्यकता नहीं। सबको अपना स्वाध्याय, अध्ययन-मनन-चिन्तन शान्ति से करते रहना चाहिए।"

"पहिले भी धार्मिक व सामाजिक परिस्थितियों पर आपके द्वारा व्यक्त विचारों को जानकर धार्मिक समाज को बहुत शान्ति व शक्ति मिली थी। इन विचारों को भी मैं आत्मार्थी बन्धुओं व धार्मिक समाज तक आत्मधर्म के माध्यम से पहुँचा दूंगा। इससे समाज को शान्त व स्वाध्यायरत रहने में मार्गदर्शन प्राप्त होगा, शक्ति प्राप्त होगी।"

"तुम्हारी बात तुम जानो" कहते हुए गुरुदेव स्वाध्यायरत हो गये और मैं भी उनके प्रति अत्यन्त आभार व्यक्त करते हुए नमस्कार कर चल दिया। ●

वह तो नाममात्र का भी जैन नहीं

एक और इन्टरव्यू : कानजी स्वामीजी से

"स्वामीजी 'खाओ, पीओ और मौज उड़ाओ' के सिद्धान्तों का प्रचार कर रहे हैं।" आदि न जाने कैसी-कैसी बे-सिर-पैर की अफवाहें आजकल निहितस्वार्थी लोगों द्वारा बुद्धिपूर्वक फैलाई जा रही हैं।

उक्त संदर्भ में स्वामीजी के विचार समाज तक पहुंचें, इस पवित्र भावना से सम्पादक आत्मधर्म द्वारा कुराबड़ (राजस्थान) में पंचकल्याणक के अवसर पर दीक्षा-कल्याणक के दिन दि० १८–५–७८ को पू० स्वामीजी से लिया गया यह पाँचवाँ इन्टरव्यू आत्मधर्म के जिज्ञासु पाठकों की सेवा में प्रस्तुत है।

"जो मद्य-मांस-मधु का सेवन करता है, जिनमें अगणित त्रसजीव पाये जाते हैं – ऐसे पंच उदुम्बर फलों को खाता है; वह तो नाममात्र का भी जैन नहीं, जिनवाणी सुनने का भी पात्र नहीं।"

उक्त शब्द पूज्य स्वामीजी ने तब कहे जब उनसे पूछा गया कि "आप तो कहते हैं कि आत्मा के अनुभव के बिना अर्थात् सम्यग्दर्शन हुए बिना संयम अर्थात् सम्यक्चारित्र नहीं होता। तो क्या मद्य-मांस-मधु का त्याग भी सम्यग्दर्शन होने के बाद होगा ?"

अपनी बात को स्पष्ट करते हुए वे आगे बोले "भाई ! इन चीजों का सेवन तो नामधारी जैन को भी नहीं होना चाहिए। प्रत्येक जैनमात्र को सप्त व्यसनों का त्याग और अष्ट मूलगुणों का धारण सर्व प्रथम होना चाहिए।

जरा विचार तो करो ! क्या शराबी कबाबी को आत्मा का अनुभव हो सकता है ? तुम आत्मा के अनुभव और सम्यग्दर्शन की बात करते हो, वह तो जिनवाणी सुनने का भी पात्र नहीं है।"

निरन्तर अध्ययन के लिए समीप रखे हुए शास्त्रों में से पुरुषार्थसिद्ध्युपाय उठाकर उसमें से ७४वाँ छन्द निकालकर दिखाते हुए बोले –

"लो, देखो साफ-साफ लिखा है :–

अष्टावनिष्टदुस्तरदुरितायतनान्यमूनि परिवर्ज्य ।
जिनधर्मदेशनाया भवन्तिपात्राणि शुद्धधियः ।।७४।।

दुःखदायक दुस्तर और पाप के स्थान ऐसे आठ पदार्थों का परित्याग करके निर्मल बुद्धि वाले पुरुष जैनधर्म के उपदेश को सुनने के पात्र होते हैं।"

"और रात्रि भोजन ?"

मेरे द्वारा यह कहे जाने पर बोले – "रात्रि भोजन में मांस भक्षण का दोष है। रात्रि में अनेक कीड़े-मकोड़े भोजन में पड़ जाते हैं। अथाना-अचार भी नहीं खाना चाहिए, उसमें भी त्रसजीव पड़ जाते हैं। अनछना पानी भी काम में नहीं लेना चाहिए। अनन्तकाय जमीकन्द, अमर्यादित मक्खन आदि का सेवन करना भी ठीक नहीं। हमने तो ६६ वर्ष से रात्रि में पानी की बूंद भी नहीं ली है। विक्रम सं० १९६५-६६ से अचार भी नहीं खाया है। अनछना पानी पीना तो बहुत दूर, काम में भी नहीं लेते। जमीकन्द आदि खाने का तो प्रश्न ही नहीं उठता।"

"और कुछ ?"

"और कुछ क्या ? चरणानुयोग के शास्त्रों में जो आचरण सामान्य जैनी के लिए बताया गया है, उसका पालन प्रत्येक जैनी को अवश्य करना चाहिए।"

"यदि ऐसी बात है तो आप यह सब कहते क्यों नहीं हैं ?"

"कह तो रहे हैं तुमसे, और कैसे कहना होता है ?"

' हमसे तो कह रहे हैं, पर प्रवचन में तो नहीं कहते ?"

"प्रवचनों में भी कहते रहते हैं। अभी बेंगलोर, हैदराबाद, बम्बई आदि में ही कहा था। तुमने नोट भी किया था, आत्मधर्म (अप्रेल, १९७८) में छापा भी है।"

"वहाँ तो कहा था, पर सोनगढ़ में तो नहीं कहते ?"

"वहाँ भी कहते हैं। मद्य-मांस की तो बात ही क्या, सोनगढ़ में तो कोई रात्रि में भोजन भी नहीं करता। जमीकन्द और अनछने पानी का प्रयोग भी नहीं करते।"

"यह तो ठीक कि वहाँ कोई रात्रि में भोजन आदि नहीं करता और आप कहते भी हैं, पर कभी-कभी ही कहते हैं, हमेशा क्यों नहीं कहते? आपको ऐसी बात कहते हमने तो बहुत कम सुना है?"

"तुम जैसे लोग हमसे तत्त्व का मर्म सुनने आते हैं। अनुभव की – अध्यात्म की गहरी बातें सुनने आते हैं; तुमसे ऐसी बातें कहें? भाई! बात यह है हम पहिले तो बहुत कहते थे। पर अब ऐसी बातों की अपेक्षा तत्त्व की गहरी चर्चा करने का विकल्प आता है।

मूल बात तो एक आत्मा के अनुभव की है, उसके बिना यह मनुष्य भव व्यर्थ ही चला जायगा। यह सब तो अनन्तबार किया, पर आत्मा के अनुभव बिना इससे क्या होता है? भव का अभाव तो होने से रहा। आत्मानुभव के पूर्व इनके सेवन के अभावमात्र से आत्मा का अनुभव हो जावेगा – ऐसी बात नहीं है। जब तक राग से भिन्न आत्मा अपने अनुभव में नहीं आयेगा तब तक यह सब ठीक ही है, कुछ विशेष दम नहीं है – इन बातों में।

इन बातों की अधिक चर्चा से लाभ भी क्या है? जैन समाज में मद्य-मांस तो है ही नहीं। जब इन चीजों का कोई सेवन ही नहीं करता तब इनकी चर्चा बार-बार करने से लाभ भी क्या है?"

जब मैंने कहा कि "जैन समाज में भी यह रोग लगने लगा है" –

तब आश्चर्य व्यक्त करते हुए बोले "क्या कहते हो ? ऐसा नहीं हो सकता।"

"नहीं साब हो रहा है।"

"हम तो तुम्हारे मुंह से सुन रहे हैं, यह तो बहुत बुरी बात है। कैसा समय आ गया है। इस अमूल्य मनुष्यभव और जैनकुल में यह सब ? क्या होगा इनका ? कहाँ जायेंगे ऐसे लोग ?" कहते-कहते एकदम गंभीर हो गये।

उनकी गंभीरता को भंग करते हुए जब मैंने कहा – "इसमें क्या ? यह तो सब परद्रव्य हैं। जब एक द्रव्य दूसरे का कुछ भला-बुरा करता ही नहीं, एक द्रव्य का दूसरे पर कोई प्रभाव ही नहीं पड़ता, तब फिर क्यों इनके खाने-पीने का आनन्द छोड़ा जाय ?"

तब कहने लगे – "भाई तुम कैसी बातें करते हो ? खाने-पीने में आनन्द है ही कहाँ ? ये सब तो दुःखरूप हैं, दुःख छोड़ने की बात कह रहे हैं; आनन्द छोड़ने की नहीं। आनन्द तो अपनी आत्मा में है। जब हम आत्मा का आश्रय लेंगे, आत्मा का अनुभव करेंगे, तब आनन्द की प्राप्ति होगी।

यह बात तो पूर्णतः सत्य ही है कि एक द्रव्य दूसरे का भला-बुरा नहीं करता, पर जब यह आत्मा अज्ञान दशा में परके लक्ष्य से स्वयं राग-द्वेष-मोहरूप भाव करता है

तब स्वयं दुःखी होता है। यद्यपि परपदार्थ सुख-दुःख के कारण नहीं हैं, तथापि उनके सेवन का राग तो दुःखरूप है, दुःख का कारण है। अभक्ष्य पदार्थ राग के आश्रयभूत निमित्त हैं, अतः उनके प्रति राग छोड़ना इष्ट है। राग छूटने पर वे स्वयं छूट जाते हैं, अतः यह भी कहा जाता है कि उन्हें छोड़ा।

एक द्रव्य दूसरे का कर्त्ता नहीं – यह बात भोगों की पुष्टि के लिए नहीं कही जाती, अपितु वस्तु के सही स्वरूप को बताने के लिए कही जाती है।

जो व्यक्ति इस महान सिद्धान्त से भोग की पुष्टि निकाले उसके लिये हम क्या करें? वह तो ऐसी बात सुनने का भी पात्र नहीं है।"

जब उन्होंने यह कहा तो मैंने तत्काल बात को पकड़ते हुए कहा – "इसीलिए तो कहते हैं कि आप अपात्रों को ऐसी बातें क्यों समझाते हैं?"

मुस्कराते हुए बोले – "हम अपात्रों को कहाँ समझाते हैं? हम तो तुम जैसे पात्रों को समझाते हैं। जो हमारी बातों को यहाँ-वहाँ से सुनके उल्टा-सीधा अर्थ निकालते हैं वे हमारे पास आते ही कहाँ हैं?

समय निकालकर जो हमारे पास आते हैं, महीनों रहते हैं – ऐसे पात्र जीवों को भी न बतावें तो किसे बतावें।

हमारे पास आने वालों ने तो कभी ऐसा अर्थ निकाला नहीं।"

"तो ठीक है जो आपके पास सोनगढ़ आते हैं, महीनों रहते हैं, उनसे ही ये बातें कहा करें। जब आप बाहर जाते हैं, वहाँ क्यों कहते हैं?"

"हम जहाँ भी जाते हैं, हमें सुनने तो पात्रजीव ही आते हैं। क्योंकि सब जानते हैं कि हमारे पास कोई राग-रंग की बात तो है नहीं – हमारे पास तो शुद्ध आत्मा की बात है, उसे सुनने ही जो आते हैं, उन्हें हम सुनाते हैं। अतः हम चाहे जहाँ हों – सोनगढ़ में या बाहर, कहीं भी – हमारे पास तो एक ही बात है, सो वही सबसे कहते हैं।"

"आप यह भी तो कहते हैं कि कोई किसी को समझा नहीं सकता। फिर भी आप समझाते हैं? प्रवचन करते हैं?"

"कोई किसी को समझा नहीं सकता, यह बात पूर्णतः सही है। हमारी बात तो बहुत दूर, भगवान भी नहीं समझा सकते। यदि समझा सकते होते तो फिर आज दुनियाँ में कोई नासमझ नहीं रहता। भगवान जैसे समझाने वाले मिले, यह जगत तो फिर भी न समझा, फिर हमारी क्या विसात्?

हम तो सभी को समझाना चाहते हैं। पर जो स्वयं समझने का यत्न करते हैं, उन्हें उनके कारण स्वयं समझ में आ जाता है। जो यत्न नहीं करते हैं, उनकी समझ में नहीं आना है। हम तो निमित्त मात्र हैं।

रही बात यह कि हम क्यों समझाते हैं, क्यों प्रवचन करते हैं? सो भाई! बात यह है कि यह जानते हुए भी

कि हम किसी को समझा नहीं सकते, समझाने का भाव आये बिना नहीं रहता। हमारी ही क्या समस्त ज्ञानियों की यही दशा है। आचार्यों की भी यही श्रद्धा थी – फिर भी उन्हें समझाने का भाव आये बिना रहा नहीं। यदि ऐसा न होता तो संपूर्ण जिनागम की रचना कैसे होती ? फिर तो देशनालब्धि भी न रहती।"

"देशनालब्धि के बिना तो सम्यग्दर्शन की उत्पत्ति ही नहीं होती ?"

"यह बात ठीक है कि सम्यग्दर्शन के पूर्व देशनालब्धि होती है, पर देशनालब्धि से सम्यग्दर्शन होता है – यह बात नहीं। क्योंकि देशनालब्धि तो निमित्त मात्र है। चार लब्धियाँ तो अनेक बार प्राप्त हुईं, पर सम्यग्दर्शन नहीं हुआ। पाँचवीं करणलब्धि हो तो नियम से सम्यग्दर्शन होता है। करणलब्धि उपादानरूप है, अतः कार्य का नियामक तो उपादान ही रहा।"

" तो क्या आप निमित्त को नहीं मानते ?"

"निमित्त को निमित्त मानते हैं, निमित्त को कर्त्ता नहीं मानते। कर्त्ता वह है भी नहीं। कर्त्ता की व्याख्या आचार्य अमृतचन्द्र ने इसप्रकार दी है :–

'यः परिणमति स कर्त्ता।'[1]

जो कार्यरूप स्वयं परिणमित हो, उसे कर्त्ता कहते हैं।

उपादान स्वयं कार्यरूप परिणमित होता है, अतः वास्तविक कर्त्ता तो वही है।"

---

[1] समयसार कलश, ५१

"कहीं-कहीं निमित्त को भी कर्त्ता कहा है न ?"

"निमित्त को भी व्यवहार से कर्त्ता कहा जाता है। वास्तविक कर्त्ता तो उपादान ही है। जहाँ निमित्त को कर्त्ता कहा हो, उसे व्यवहारनय से किया गया उपचरित कथन जानना चाहिए।"

"आपकी आत्मा की बात है तो बहुत अच्छी, पर है बहुत कठिन ?"

"कठिन तो है, पर अशक्य नहीं। यदि कोई पुरुषार्थ करे तो समझ में आ सकती है।"

"जनसाधारण की समझ में आना तो सम्भव नहीं ?"

"क्यों नहीं ? वे भी तो आदमी हैं। कठिन है, पर इतनी नहीं कि आदमी की भी समझ में न आये। भगवान तो कहते हैं कि प्रत्येक सैनी पंचेन्द्रिय को आत्म-ज्ञान हो सकता है, चाहे वह किसी भी गति में क्यों न हो ?

मेरी समझ में न आवेगी – ऐसा मानकर किसी को भी इससे उदास नही होना चाहिए। अनन्त दुखों को मेटने वाली, संसार-सागर से पार उतारने वाली बात तो एकमात्र आत्मा की ही बात है।

यद्यपि प्रत्येक गृहस्थ का जीवन पूर्ण सदाचारमय होना चाहिए तथापि समस्त सदाचार की शोभा आत्म-ज्ञान से है, आत्मश्रद्धान से है, आत्मानुभूति से है।"

"और सम्यक्चारित्र ?"

"सम्यक्चारित्र तो साक्षात् धर्म है, मुक्ति का साक्षात् कारण है; किन्तु वह सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान के बिना नहीं होता।"

"शुद्धभाव तो इस जमाने में होता नहीं और शुभभाव आप छुड़ाते हैं, तो क्या अशुभभाव में रहना ?"

"कौन कहता है कि शुद्धभाव इस समय में नहीं होता ? साक्षात् धर्म तो वीतरागभावरूप शुद्धभाव ही है। शुद्धभाव नहीं होने का अर्थ यह है कि इस युग में धर्म नहीं होता, जबकि शास्त्रों में स्पष्ट लिखा है कि शुद्धभाव-रूप चारिधर्म का सद्भाव तो पंचमकाल के अन्त तक रहेगा।

और यह भी कौन कहता है कि हम शुभभाव छुड़ाते हैं ? हम तो शुभभाव को धर्म मानना छुड़ाते हैं। रागरूप होने से वह धर्म है भी नहीं। क्योंकि धर्म तो वीतराग-स्वरूप है।

शुभराग की सत्ता तो भूमिकानुसार मुनिराज के भी होती है, किन्तु शुभराग को धर्म सम्यग्दृष्टि ज्ञानी भी नहीं मानता। शुभराग का होना चारित्र की कमजोरी है, जबकि शुभराग को धर्म मानना मिथ्यात्व नामक महापाप।

शुभभाव को धर्म मानना छुड़ाकर आचार्यदेव मिथ्यात्व नामक महापाप को छुड़ाते हैं, शुभभाव को नहीं।"

"तो शुभभाव तो करना चाहिए न ?"

"चाहिए का प्रश्न कहाँ उठता है ? ज्ञानी धर्मात्मा को भूमिकानुसार शुभभाव आता ही है, किन्तु वह उसे धर्म नहीं मानता।

शास्त्रों में भी जहाँ कहीं शुभभाव को व्यवहार से धर्म कहा है वह कथन उपचरित कथन है। वास्तविक (निश्चय) धर्म तो शुभाशुभभाव के अभावरूप शुद्धभाव ही है।"

"शुभ को छोड़कर अशुभ में जाना तो अच्छा नहीं ?"

"बिलकुल नहीं, पर जिसप्रकार शुभ को छोड़कर अशुभ में जाना अच्छा नहीं; उसीप्रकार शुभ को धर्म मानना भी अच्छा नहीं। इस ओर भी ध्यान दिया जाना चाहिए।"

प्रतिष्ठा में प्राप्त प्रतिमाओं पर अंकन्यास-विधि सम्पन्न करने जाने के लिएं उनका समय हो गया था। अतः "अभी और समय नहीं है, कुछ पूछना हो तो फिर कभी पूछना" –

यह कहकर जब वे जाने लगे तो मैं भी उन्हें सविनय नमस्कार कर चल दिया। ●

तूफान

[पूज्य श्री कानजी स्वामी के प्रति]

लो रोको तूफान चला रे,
पाखंडों के महल ढहाता
लो रोको तूफान चला रे

(१)

सह न सका जो मिथ्या-तम की
सीमा का जीवन में बंधन
रह न सका अवरुद्ध वहाँ जो
बढ़ने लगा हृदय का स्पंदन
एक दिवस अन्तर रवि जागा
पुण्य जागरण बेला आई
जिसकी ज्ञान चेतना ने रे !
चिरनिद्रा से ली अंगड़ाई
जिसकी करवट से संशय का
चिर-सिंहासन डोल चला रे
पाखंडों के०

(२)

निखिल विश्व पथ पाये—
हिय में करुणा का संसार समेटे
अपनी एक श्वास में रे जो
संशय-तम का मरण लपेटे
जिसकी प्रज्ञा के प्रताप से
कर्तावाद को थी हैरानी
अरे! मृतक को मिली चेतना
सुन जिसकी कल्याणी वाणी
अरे! मुक्ति के सुन्दर पथ का
करता जो जय-घोष चला रे
पाखंडों के०

(३)

बोली दुनिया "अरे अरे रे!
मात-पिता का धर्म न छोड़ो
जिसमें तुमने जन्म लिया है
उस पथ से अब मुंह मत मोड़ो
हरी भरी सी कीर्ति-लता है
दिग् दिगंत में व्याप्त तुम्हारी
यह लो यह लो सिंहासन लो
लेकिन रक्खो लाज हमारी
अरे तुम्हारे इस निश्चय से
भूतल पर भूचाल मचा रे
पाखंडों के०

(४)

उत्तर मिला, "धर्म-शिशु जननी
के अंचल में नहिं पलता है
और पिता की परम्परा से
बंध कर धर्म नहीं चलता है
अरे ! लोक की सीमाओं को
छोड़ धर्म का स्यंदन चलता
ज्ञान-चेतना के अंचल में
प्यारा धर्म निरंतर पलता
सिंहासन क्या, धर्म देह की
ममता तक को छोड़ चला रे"
पाखंडों के०

(५)

प्राणों का भीषण संकट भी
उसका पथ नहिं मोड़ सका रे
कोटि-कोटि आंसू का वर्षण
उसका व्रत नहीं तोड़ सका रे
रे ! उत्तुंग हिमाचल सा
बेरोक बढ़ा वह अपने पथ पर
जिसने उसके पथ को रोका
झुका उसी का मस्तक भू पर
पर्वत ने भी उसे राह दी
खंड-खंड हो वज्र गिरा रे
पाखंडों के०

(६)

जिसको राह मिली, उसको
अब चाह रही क्या शेष बताओ
जिसको थाह मिली उसको
पर्वाह रही क्या शेष बताओ
उसने युग की धारा पलटी,
वह अध्यात्म-क्रांति का सृष्टा
एक दिव्य संदेश विश्व को
चेतन केवल ज्ञाता-दृष्टा
रे अणु-अणु की आजादी का
शंख-नाद वह फूंक चला रे
पाखंडों के०

(७)

अरे वीर के जन्म-दिवस पर
भूतल का अभिशाप मिट गया
अरे वीर के जन्म-दिवस से
एक नया इतिहास जुड़ गया
अंधकार में युग सोता था
घुटती थी जीवन की श्वासें
पानी में भी पड़े हुए थे
अरे! मीन युग-युग के प्यासे
तेरा पावन पुनर्जन्म यह
वसुधा का वरदान बना रे
पाखंडों के०

हमारे यहाँ प्राप्त महत्त्वपूर्ण प्रकाशन

ग्रन्थ	मूल्य
सम्यग्ज्ञान चन्द्रिका भाग-१	४०/-
बृहद्जिनवाणी संग्रह / मोक्षशास्त्र	२८/-
सम्यग्ज्ञान चन्द्रिका भाग-२, ३	२५/-
समयसार	२२/-
प्रवचनसार / अष्टपाहुड / समयसार	२०/-
अनुशीलन भाग-१ सम्पूर्ण	"
आ. अमृतचन्द्र : व्यक्तित्व और कर्तृत्व	"
नियमसार / समयसार कलश टीका	१८/-
परमभाव प्रकाशक नयचक्र	१६/-
सिद्धचक्र विधान / पंचास्तिकाय /	१५/-
समयसार नाटक / धवलसार / मोक्षमार्ग प्रकाशक / प्रवचनरत्नकार भाग-२	"
प्रवचनरत्नाकर भाग-१ / भावदीपिका	१३/-
संस्कार / प्रवचनरत्नाकर भाग-६/	१२/-
ज्ञानस्वभाव-ज्ञेयस्वभाव / जिनेन्द्र अर्चना / इन्द्रध्वज विधान	"
पं. टोडरमल : व्यक्तित्व और कर्तृत्व /	११/-
आत्मा ही है शरण	"
आ. कुन्दकुन्द और उनके टीकाकार /	१०/-
कालजयी व्यक्तित्व : बनारसीदास /	"
प्रवचनरत्नाकर भाग-३, ४, ५ व ७	"
राम कहानी	९/-
सत्य की खोज / पुरुषार्थसिद्धयुपाय /	८/-
वारसाणुवेक्खा / श्रावकधर्म प्रकाशक	"
तीर्थंकर भगवान महावीर और उनका	७/-
सर्वोदय तीर्थ / ज्ञानगोष्ठी / परीक्षामुख /	"
विदाई की वेला / चौबीस तीर्थंकर पूजन	"
विधान / पंचकल्याणक महोत्सव पूजन /	"
भक्तामर प्रवचन / वीतराग-विज्ञान	"
पाठमाला भाग-१, २, ३ का सेट	"
धर्म के दशलक्षण / बारह भावना	६/-
एक अनुशीलन / जिनवरस्य नयचक्रम् /	"
आप कुछ भी कहो / बालबोध पाठमाला भाग-१, २, ३	"
क्रमबद्ध पर्याय / गागर में सागर /	५/-
आ. कुन्दकुन्द और उनके पंचपरमागम /	"

ग्रन्थ	मूल्य
कारणशुद्धपर्याय / छहढाला सचित्र /	५/-
बनारसी विलास / णमोकार महामंत्र	"
अर्द्धकथानक / अध्यात्म संदेश /	"
वीतराग-विज्ञान प्रवचन भाग-३, ४	"
तत्त्वज्ञान पाठमाला भाग १ एवं २	"
सुखी होने का उपाय भाग-१, २ एवं ३ /	४/-
वीतराग-विज्ञान प्रवचन भाग-२ /	"
मनीषियों की दृष्टि में समयसार /	"
शान्तिविधान / रत्नत्रय पूजन-विधान /	"
भक्ति सरोवर / जैन बालपोथी भाग-१ /	"
गुणस्थान प्रवेशिका / जैन बालपोथी	"
भाग-२ / सत्तास्वरूप/पदार्थ विज्ञान /	"
सामान्य श्रावकाचार / जिनपूजन रहस्य	"
पंचकल्याण प्रतिष्ठा महोत्सव / वीतराग	३/-
विज्ञान प्रवचन-१ चौंसठ ऋद्धि विधान /	"
पंचपरमेष्ठी पूजन विधान /	"
वीर हिमाचल ते निकसी	"
अहिंसा महावीर की दृष्टि में /	२/५०
निमित्तोपादान / चिद्विलास	"
मैं कौन हूँ / लघु जैनसिद्धान्त प्रवेशिका /	२/-
चैतन्य चमत्कार / भरत बाहुबली नाटक /	"
शान्तिसुधा / मुक्ति का मार्ग /	"
आत्मसम्बोधन / जिनधर्म प्रवेशिका /	"
जैनमुहूर्त्त विधि	"
सार समयसार /	१/५०
शाश्वत तीर्थधाम : सम्मेदशिखर	"
कुन्दकुन्द शतक / समयसार पद्यानुवाद	१/२५
णमोलोए सव्वसाहूणं / बारहभावना एवं	१/-
जिनेन्द्र वन्दना / शुद्धात्म शतक / तीर्थंकर	"
भगवान महावीर / अनेकान्त और	"
स्यादवाद् / शाकाहार : जैनदर्शन के	"
परिप्रेक्ष्य में / जैन झण्डा गायन	"
अर्चना (जेबी साइज) /	/७५
गोम्मटेश्वर बाहुबली	"
योगसार पद्यानुवाद / उपासना	/५०
वीतरागी व्यक्तित्व : भगवान महावीर	/२५